प्रेम चंद

प्रेम चतुर्थी

H
813.2
P 916 P

H
813.2
P916P

Allahabad

दिल्ली

CATALOGUED

प्रेमचंद Premchand

※

प्रेम-चतुर्थी Prem-Chaturthi

※※
※※

Saraswati Press

सरस्वती प्रेस

इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ, दिल्ली

CENTRAL

पंचम संस्करण
जनवरी १९६७

Library IIAS, Shimla
H 813.2 P 916 P
00046115

सूची

१—बैंक का दिवाला	...	...	३
२—शान्ति	...	...	३०
३—लाल फीता	...	...	४८
४—लाग-डाँट	...		७३

H
813.2

मूल्य : एक रुपये पचास नये पैसे

46115
29.1.74

मुद्रक
रामशरण अग्रवाल,
प्रगति प्रेस, ७३, कल्याणीदेवी
इलाहाबाद

बैंक का दिवाला

लखनऊ नेशनल बैंक के बड़े दफ्तर में लाला साईंदास आरामकुर्सी पर लेटे हुए शेयरों का भाव देख रहे थे और सोच रहे थे कि इस बार हिस्सेदारों को मुनाफा कहाँ से दिया जायगा ? चाय, कोयला या जूट के हिस्से खरीदने, चाँदी, सोने या रुई का सट्टा करने का इरादा करते, लेकिन नुकसान के भय से कुछ तय न कर पाते थे। नाज के व्यापार में इस ओर बड़ा घाटा रहा, हिस्सेदारों के ढाढ़स के लिए हानि-लाभ का कल्पित ब्यौरा दिखाना पड़ा और नफा पूंजी से देना पड़ा। इससे फिर नाज के व्यापार में हाथ डालते जी काँपता था।

पर रुपये को बेकार पड़ा रखना असम्भव था। दो-एक दिन में उसे कहीं-न-कहीं लगाने का उचित उपाय करना जरूरी था, क्योंकि डाइरेक्टरों की तिमाही बैठक एक ही सप्ताह में होनेवाली थी, यदि उस समय तक कोई निश्चय न हुआ, तो आगे तीन महीनों तक फिर कुछ न हो सकेगा और छमाही मुनाफे के बँटवारे के समय फिर वही फरजी कार्रवाई करनी पड़ेगी, जिसको बार-बार सहन करना बैंक के लिए कठिन था। बहुत देर तक इस उलझन में पड़े रहने के बाद लाला साईंदास ने घंटी बजायी, इस पर बगल के दूसरे कमरे से एक बंगाली बाबू ने सिर निकाल कर झाँका।

साईंदास—टाटा स्टील कम्पनी को एक पत्र लिख दीजिए कि अपना नया बैलेन्स शीट भेज दें।

बाबू—उन लोगों को रुपया का गरज नहीं। चिट्ठी का जवाब नहीं देता।

साईंदास—अच्छा, नागपुर स्वदेशी मिल को लिखिए।

बाबू—उसका कारोबार अच्छा नहीं है। अभी उसके मजूरों ने हड़ताल किया था। दो महीना तक मिल बन्द रहा।

साईंदास—अजी तो कहीं लिखो भी, तुम्हारी समझ में तो सारी दुनिया बेईमानों से भरी है।

बाबू—बाबा, लिखने को तो हम सब जगह लिख दें, मगर लिख देने से तो कुछ लाभ नहीं होता।

लाला साईंदास अपनी कुल-प्रतिष्ठा और मर्यादा के कारण बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर हो गये थे, पर व्यावहारिक बातों से अपरिचित थे। यही बंगाली बाबू इनके सलाहकार थे और बाबू साहब को किसी कारखाने या कम्पनी पर भरोसा न था। इन्हीं के अविश्वास के कारण पिछले साल बैंक का रुपया सन्दूक से बाहर न निकल सका था और अब वही रंग फिर दिखायी देता था। साईंदास को इस कठिनाई से बचने का कोई उपाय न सूझता था। न इतनी हिम्मत थी कि अपने भरोसे किसी व्यापार में हाथ डालें। बेचैनी की दशा में उठ कर कमरे में टहलने लगे कि दरबान ने आ कर खबर दी, बरहल की महारानी की सवारी आयी है।

२

लाला साईंदास चौंक पड़े। बरहल की महारानी को लखनऊ आये तीन-चार दिन हुए थे, और सबके मुँह से उन्हीं की चर्चा सुनायी देती थी। कोई पहनावे पर मुग्ध था, कोई सुन्दरता पर, कोई उनकी स्वच्छन्द वृत्ति पर। यहाँ तक कि उनकी दासियाँ और सिपाही आदि भी लोगों के चर्चा-पात्र बने हुए थे। रायल होटल के द्वार पर दर्शकों की भीड़-सी लगी रहती। कितने ही शौकीन, बेफिकरे, इतरफरोश, बजाज, तम्बाकूगर का वेश धर कर उनके दर्शन कर चुके थे। जिधर महारानी की सवारी निकल जाती दर्शकों के ठट्ट लग जाते थे। वाह-वाह क्या शान है! ऐसी इराकी जोड़ी लाट साहब के सिवा किसी राजा-रईस के यहाँ तो शायद ही निकले और सजावट भी क्या खूब है! भाई, ऐसे गोरे आदमी तो यहाँ कभी दिखाई नहीं देते। यहाँ तो धनाढ्य लोग मृगांक और चन्द्रोदय और ईश्वर जाने क्या-क्या खाक-बला खाते रहते हैं, परन्तु

किसी के वदन पर तेज या प्रकाश का नाम नहीं। यह लोग न जाने क्या भोजन करते और किस कुएं का जल पीते हैं कि जिसे देखिए ताजा सेव बना हुआ है। यह सब जलवायु का प्रभाव है।

बहरल उत्तर दिशा में नैपाल के समीप अँगरेजी राज्य में एक रियासत थी। यद्यपि जनता उसे बहुत मालदार समझती थी, पर वास्तव में उस रियासत की आमदनी दो लाख से अधिक न थी। हाँ, क्षेत्रफल बहुत विस्तृत था। बहुत भूमि ऊसर और और उजाड़ थी। बसा हुआ भाग भी पहाड़ी और अनुर्वर था और जमीन बहुत सस्ती उठती थी।

लाला साईंदास ने तुरन्त अलगनी से उतार कर रेशमी सूट पहन लिया और मेज पर आकर इस शान से बैठ गये मानों राजा-रानियों का यहाँ आना कोई असाधारण बात नहीं है। दफ्तर के क्लर्क भी सँभल गये। बैंक में सन्नाटे की हलचल पैदा हो गयी। दरबान ने पगड़ी सँभाली। चौकीदार ने तलवार निकाली और अपने स्थान पर खड़ा हो गया। पंखाकुली की मीठी नींद भी टूटी और बंगाली बाबू महारानी के स्वागत के लिए दफ्तर से बाहर निकले।

साईंदास ने बाहरी ठाट तो बना लिया, किन्तु चित्त आशा और भय से चंचल हो रहा था। एक रानी से व्यवहार करने का यह पहला ही अवसर था। घबराते थे कि बात करते बने या न बने, रईसों का मिजाज आसमान पर होता है। मालूम नहीं, मैं बात करने में कहाँ चूक जाऊँ। उन्हें इस समय अपने में एक कमी मालूम हो रही थी। वह राजसी नियमों से अनभिज्ञ थे। उनका सम्मान किस प्रकार करना चाहिए, उनसे बातें करने में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, उनकी मर्यादा-रक्षा के लिए कितनी नम्रता उचित है, इस प्रकार के प्रश्नों से वह बड़े असमंजस में पड़े हुए थे और जी चाहता था किसी तरह इस परीक्षा से शीघ्र मुक्ति हो जाय। व्यापारियों और मामूली जमींदारों या रईसों से वह रुखाई और सफाई का बर्ताव किया करते थे और पढ़े-लिखे सज्जनों से शील और शिष्टता का। उन अवसरों पर उन्हें किसी विशेष विचार को

आवश्यकता न होती थी; पर उन्हें इस समय ऐसी परेशानी हो रही थी, जैसी लंकावासी को तिब्बत में हो, जहाँ के रस्म-रिवाज और बातचीत का उसे ज्ञान न हो।

यकायक उनकी दृष्टि घड़ी पर पड़ी। तीसरे पहर के चार बज चुके थे; परन्तु घड़ी अभी दो पहर की नींद में मग्न थी। तारीख की सुई ने दौड़ में समय को भी मात कर दिया था। वह जल्दी से उठे कि घड़ी को ठीक कर दें कि इतने में महारानी का कमरे में पदार्पण हुआ। साईंदास ने घड़ी को छोड़ा और महारानी के निकट जा, बगल में खड़े हो गये। निश्चय न कर सके कि हाथ मिलाऊँ या झुक कर सलाम करूँ। रानी जी ने स्वयं हाथ बढ़ा कर उन्हें इस उलझन से छुड़ाया।

जब लोग कुर्सियों पर बैठ गये तो रानी के प्राइवेट सेक्रेटरी ने व्यवहार की बातचीत आरम्भ की। बरहल की पुरानी गाथा सुनाने के बाद उसने उन उन्नतियों का वर्णन किया, जो रानी साहिबा के प्रयत्न से हुई थीं। इस समय नहरों की एक शाखा निकालने के लिए दस लाख रुपयों की आवश्यकता थी और यद्यपि रानी साहिबा किसी अंग्रेजी बैंक से रुपये ले सकती थीं, परन्तु उन्होंने एक हिन्दुस्तानी बैंक से ही काम करना अच्छा समझा। अब यह निर्णय केवल नेशनल बैंक के हाथ में था कि वह इस अवसर से लाभ उठाना चाहता है या नहीं?

बंगाली बाबू—हम रुपया दे सकता है मगर कागज-पत्तर देखे बिना कुछ नहीं कर सकता।

सेक्रेटरी—आप कोई जमानत चाहते हैं?

साईंदास उदारता से बोले—महाशय, जमानत के लिए आपकी जबान काफी है।

बंगाली बाबू—आपके पास रियासत का कोई हिसाब-किताब है?

लाला साईंदास को अपने हेड-क्लर्क का यह दुनियादारी का बर्ताव अच्छा न लगता था। वह इस समय उदारता के नशे में चूर थे। महारानी की सूरत ही पक्की जमानत थी; उसके सामने कागज और हिसाब

का वर्णन करना वनियापन जान पड़ता था, जिससे अविश्वास की गन्ध आती है।

महिलाओं के सामने हम शील और संकोच के पुतले वन जाते हैं। वङ्गाली वावू को क्रूर-कठोर दृष्टि से देख कर वोले कि कागजों की जाँच कोई आवश्यक वात नहीं है, केवल हमको विश्वास होना चाहिए।

वङ्गाली वावू—डाइरेक्टर लोग कभी न मानेंगे।

साईंदास—हमको इसकी कोई परवाह नहीं। हम अपनी जिम्मेदारी पर रुपया दे सकते हैं।

रानी ने साईंदास की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा। उनके होठों पर हल्की मुस्कराहट दिखलाई पड़ी।

३

परन्तु डायरेक्टरों ने हिसाव-किताव, आय-व्यय देखना आवश्यक समझा और यह काम लाला साईंदास के ही सुपुर्द हुआ; क्योंकि और किसी को अपने कामों से फुर्सत न थी कि एक पूरे दफ्तर का मुआइना करता। साईंदास ने नियम-पालन किया। तीन-चार दिन तक हिसाव जाँचते रहे। तव अपने इतमीनान के अनुकूल रिपोर्ट लिखी। मामला तय हो गया। दस्तावेज लिखा गया, रुपया दिया गया, ६ सैकड़ा व्याज ठहरा।

तीन साल तक वैंक के कारवार में अच्छी उन्नति हुई। छठे महीने विना कहे-सुने पैंतालीस हजार की थैली दफ्तर में आ जाती थी। व्यवहारियों को ५ सैकड़े व्याज दे दिया जाता था। हिस्सेदारों को ७ सैकड़ा लाभ।

साईंदास से सव लोग प्रसन्न थे। सव लोग उनकी सूझ-वूझ की प्रशंसा करते थे, यहाँ तक कि वङ्गाली वावू भी धीरे-धीरे उनके कायल होते जाते थे। साईंदास उनसे कहा करते, वावू जी, विश्वास का संसार से न कभी लोप हुआ है और न होगा। सत्य पर विश्वास रखना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। जिस मनुष्य के चित्त से विश्वास जाता रहता है,

उसे मृतक समझना चाहिए। उसे जान पड़ता है कि मैं शत्रुओं से घिरा हुआ हूँ। बड़े-से-बड़ा सिद्ध महात्मा भी उसे रंगा हुआ सियार जान पड़ता है। सच्चे-से-सच्चा देश-प्रेमी उसकी दृष्टि में अपनी प्रशंसा का भूखा ही ठहरता है। संसार उसे धोखे और छल से परिपूर्ण दिखाई देता है, यहाँ तक कि उसके मन से परमात्मा पर श्रद्धा और भक्ति लुप्त हो जाती है। एक प्रसिद्ध फिलास्फर का कथन है कि प्रत्येक मनुष्य को जब तक कि उसके विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न पाओ, भला मानस समझो। वर्तमान शासन-प्रथा इसी महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त पर गठित है। और घृणा तो किसी से करनी ही न चाहिए। हमारी आत्माएँ पवित्र हैं, उनसे घृणा करना परमात्मा से घृणा करने के समान है। यह मैं नहीं कहता कि संसार में कपट-छल है ही नहीं; है और बहुत अधिकता से है, परन्तु उसका निवारण अविश्वास से नहीं, मानव-चरित्र के ज्ञान से होता है, और यह एक ईश्वरदत्त गुण है। मैं यह दावा तो नहीं करता, परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं मनुष्य को देख कर उसके मनोभावों तक पहुँच जाता हूँ। कोई कितना ही वेश बदले, रङ्ग-रूप सँवारे, परन्तु मेरी अन्तःदृष्टि को धोखा नहीं दे सकता। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विश्वास से विश्वास उत्पन्न होता है और अविश्वास से अविश्वास। यह प्राकृतिक नियम है। जिस मनुष्य को आप आरम्भ से ही धूर्त, कपटी, दुर्जन समझ लेंगे वह कभी आपसे निष्कपट व्यवहार न करेगा। वह हठात् आपको नीचा दिखाने का यत्न करेगा। इसके विपरीत आप एक चोर पर भी भरोसा करें तो वह आपका दास हो जायगा। सारे संसार को लूटे, परन्तु आपको धोखा न देगा। वह कितना ही कुकर्मी, अधर्मी क्यों न हो पर आप उसके गले में विश्वास की जंजीर डाल कर उसे जिस ओर चाहें ले जा सकते हैं। यहाँ तक कि वह आपके हाथों पुण्यात्मा बन सकता है।

बंगाली बाबू के पास लाला साईंदास के इन दार्शनिक तर्कों का कोई उत्तर न था।

४

चौथे वर्ष की पहली तारीख थी। लाला जी बैंक के दफ्तर में बैठे हुए डाकिये की राह देख रहे थे। आज बरहल से पैंतालीस हजार रुपये आयेंगे। अबकी उनका इरादा था कि कुछ सजावट के सामान और मोल लें। अब तक बैंक में टेलीफोन नहीं था, इसका भी तखमीना मँगा लिया था। आशा की आभा चेहरे से झलक रही थी! बंगाली बाबू से हँस कर कहते थे, इस तारीख को मेरे हाथों में अदबदा के खुजली होने लगती है। आज भी हथेली खुजला रही है। कभी दफ्तरी से कहते, अरे मियाँ सफकत! जरा शकुन तो विचारो, केवल सूद-ही-सूद आ रहा है या दफ्तर वालों के लिए नजराना-शुकराना भी है। आशा का प्रभाव कदाचित् स्थान पर भी होता है। बैंक आज खिला हुआ दिखलाई पड़ता था।

डाकिया ठीक समय पर आया। साईंदास ने लापरवाही से उसकी ओर देखा। उसने अपने थैले से कई रजिस्टरी लिफाफे निकाले, साईंदास ने उन लिफाफों को उड़ती निगाह से देखा। बरहल का कोई लिफाफा न था। न बीमा, न मुहर, न वह लिखावट। कुछ निराशा-सी हुई। जी में आया, डाकिये से पूछें—कोई और रजिस्टरी रह तो नहीं गयी? पर रुक गये। दफ्तर के क्लर्कों के सामने इतना अधैर्य अनुचित था, किन्तु जब डाकिया चलने लगा तब उनसे न रह गया, पूछ ही बैठे, अरे भाई, कोई बीमा लिफाफा रह तो नहीं गया? आज उसे आना चाहिए था।

डाकिये ने कहा—सरकार, भला ऐसी क्या बात है, और कहीं भूल-चूक हो जाय, पर आपके काम में भूल हो सकती है?

साईंदास का चेहरा उतर गया, जैसे कच्चे रंग पर पानी पड़ जाय। डाकिया चला गया तो बंगाली बाबू से बोले—यह देर क्यों हुई? पहले तो कभी ऐसा न होता था।

बंगाली बाबू ने निष्ठुर भाव से उत्तर दिया—किसी कारण से देर हो गया होगा। घबराने का कोई बात नहीं।

निराशा असम्भव को सम्भव बना देती है। साईंदास को इस समय यह ख्याल हुआ कि कदाचित् पारसल से रुपये आते हों। हो सकता है, तीन हजार अशर्फियों का पारसल करा दिया हो। यद्यपि इस विचार को औरों पर प्रकट करने का उन्हें साहस न हुआ, पर उन्हें यह आशा उस समय तक बनी रही जब तक पारसलवाला डाकिया वापस नहीं चला गया। अन्त में संध्या को वह बेचैनी की दशा में उठ कर घर चले गये। अब खत या तार का इन्तजार था। दो-तीन बार झुंझला कर उठे, कि डाँट कर पत्र लिखूँ और साफ-साफ कह दूं कि लेन-देन के मामले में वादा न पूरा करना विश्वासघात है। एक दिन की देर भी बैंक के लिए घातक हो सकती है, जिसमें फिर कभी ऐसी शिकायत करने का अवसर न मिले। परन्तु फिर कुछ सोचकर न लिखा।

शाम हो गयी थी, कई मित्र आ गये थे। गपशप होने लगी कि पोस्टमैन ने आकर शाम की डाक साईंदास को दी। यों वह पहले अखबारों को खोला करते थे, पर आज चिट्ठियाँ खोलीं। किन्तु बरहल का कोई खत न था। तब बेमन हो एक अंग्रेजी अखबार उठाया। पहले ही तार का शीर्षक देखकर उनका खून सर्द हो गया।

'कल शाम को बरहल की महारानी का तीन दिन की बीमारी के बाद देहान्त हो गया।'

इसके आगे संक्षिप्त नोट में यह लिखा हुआ था—

'बरहल की महारानी की अकाल मृत्यु केवल इस रियासत के लिए ही नहीं किन्तु समस्त प्रान्त के लिए एक शोकजनक घटना है। बड़े-बड़े भिषगाचार्य (वैद्यराज) अभी रोग की परख भी न कर सके थे कि मृत्यु ने काम तमाम कर दिया। रानी जी को सदैव अपनी रियासत की उन्नति का ध्यान रहता था। उनके थोड़े राज्यकाल में उनसे रियासत को जो लाभ हुए हैं, वे चिरकाल तक स्मरण रहेंगे। यद्यपि यह मानी हुई बात थी कि राज्य उनके बाद दूसरों के हाथ में जायगा, तथापि यह विचार कभी रानी साहिबा के कर्त्तव्यपालन का बाधक नहीं बना। शास्त्रा-

नुसार उन्हें रियासती जमानत पर ऋण लेने का अधिकार न था। परन्तु प्रजा की भलाई के विचार से उन्हें कई बार इस नियम का उल्लंघन करना पड़ा। हमें विश्वास है कि यदि वह कुछ दिन और जीवित रहतीं तो रियासत को ऋण से मुक्त कर देतीं। उन्हें रात-दिन इसका ध्यान रहता था। परन्तु असामयिक मृत्यु ने अब यह फैसला दूसरों के अधीन कर दिया। देखना चाहिए इन दोनों का क्या परिणाम होता है। हमें विश्वस्त रीति से मालूम हुआ है कि नये महाराज ने—जो आजकल लखनऊ में विराजमान हैं—अपने वकीलों की सम्मति के अनुसार स्वर्गीय महारानी के ऋण-सम्बन्धी हिसाबों को चुकाने से इन्कार कर दिया है। हमें भय है कि इस निश्चय से महाजनी टोले में हलचल पैदा होगी और लखनऊ के कितने ही धन-सम्पत्ति के स्वामियों को शिक्षा मिल जायगी कि ब्याज का लोभ कितना अनिष्टकारी होता है?'

लाला साईंदास ने अखबार मेज पर रख दिया और आकाश की ओर देखा, जो निराशा का अन्तिम आश्रय है। अन्य मित्रों ने यह समाचार पढ़ा। इस प्रश्न पर विवाद होने लगा। साईंदास पर चारो ओर से बौछारें पड़ने लगीं। सारा दोष उनके सिर मढ़ा गया और उनकी चिरकालिक कार्य-कुशलता और परिणामदर्शिता मिट्टी में मिल गयी। बैङ्क इतना बड़ा घाटा सहने में असमर्थ था। अब यह विचार उपस्थित हुआ कि कैसे उसकी प्राण-रक्षा की जाये।

५

ज्यों ही शहर में यह खबर फैली, लोग अपने रुपये वापस लेने के लिए आतुर हो गये। सुबह से शाम तक लेनदारों का ताँता लगा रहता था। जिन लोगों का धन चालू हिसाब में जमा था उन्होंने तुरन्त निकाल लिया, कोई उज्र न सुना। यह उसी पत्र के लेख का फल था कि नेशनल बैङ्क की साख उठ गयी थी। धीरज से काम लेते तो बैङ्क सँभल जाता, परन्तु आँधी और तूफान में कौन-सी नौका स्थिर रह सकती है? अंत में खजानची ने टाट उलट दिया। बैंक की नसों से इतनी रक्त धारें निकलीं कि वह प्राण-

रहित हो गया।

तीन दिन बीत चुके थे। बैङ्क-घर के सामने सहस्रों आदमी एकत्र थे। बैङ्क के द्वार पर सशस्त्र सिपाहियों का पहरा था। नाना प्रकार की अफवाहें उड़ रही थीं। कभी ख़बर उड़ती, लाला साईंदास ने विषपान कर लिया। कोई उनके पकड़े जाने की सूचना लाता था। कोई कहता था, डाइरेक्टर हवालात के भीतर हो गये।

यकायक सड़क पर से एक मोटर निकली और बैङ्क के सामने आकर रुक गयी। किसी ने कहा, बरहल के महाराज की मोटर है। इतना सुनते ही सैकड़ों मनुष्य मोटर की ओर घबराये हुए दौड़े और मोटर को घेर लिया।

कुँवर जगदीशसिंह महारानी की मृत्यु के बाद वकीलों से सलाह लेने लखनऊ आये थे। बहुत कुछ सामान भी खरीदना था। वे इच्छाएँ जो चिरकाल से ऐसे सुअवसर की प्रतीक्षा में थीं, अब बँधे पानी की भाँति राह पाकर उबली पड़ती थीं। यह मोटर आज ही ली गयी था। नगर में एक कोठी लेने की बातचीत हो रही थी। बहुमूल्य विलास-वस्तुओं से लदी एक गाड़ी बरहल के लिए चल चुकी थी। यहाँ भीड़ देखी तो सोचा कोई नवीन नाटक होनेवाला है। मोटर रोक दी कि इतने में सैकड़ों आदमियों की भीड़ लग गयी।

कुँवर साहब ने पूछा—यहाँ आप लोग क्यों जमा हैं? कोई तमाशा होनेवाला है क्या?

एक महाशय, जो देखने में बिगड़े रईस मालूम होते थे, बोले—जी हाँ, बड़ा मजेदार तमाशा है।

कुँवर—किसका तमाशा है?

'तकदीर का।'

कुँवर महाशय को यह उत्तर पाकर आश्चर्य तो हुआ, परन्तु सुनते आये थे कि लखनऊ वाले बात-बात में बात निकाला करते हैं। उसी ढंग से उत्तर देना आवश्यक हुआ। बोले—तकदीर का खेल देखने के लिए यहाँ

आना आवश्यक नहीं।

लखनवी महाशय ने कहा—आपका कहना सच है, लेकिन दूसरी जगह यह मजा कहाँ? यहाँ सुबह से शाम तक के बीच में भाग्य ने कितनों को धनी से निर्धन और निर्धन से भिखारी बना दिया। सवेरे जो लोग महलों में बैठे थे, इस समय उन्हें वृक्ष की छाया भी नसीब नहीं। जिनके द्वार पर सदाव्रत खुले थे, वहाँ इस समय रोटियों के लाले पड़े हैं। अभी एक सप्ताह पहले जो लोग कालगति, भाग्य के खेल और समय के फेर को कवियों की उपमा समझते थे, इस समय उनकी आह और करुण-क्रन्दन वियोगियों को भी लज्जित करता है, ऐसे तमाशे और कहाँ देखने में आयेंगे।

कुँवर—भगवन्, आपने तो पहेली को और भी गूढ़ कर दिया। मैं देहाती हूँ, मुझसे साधारण तौर से बात कीजिए।

इस पर एक सज्जन ने कहा—महोदय, यह नेशनल बैंक है। इसका दिवाला निकल गया। आदाब अर्ज! मुझे पहचाना?

कुँवर महोदय ने उनकी ओर देखा तो मोटर से कूद पड़े और उनसे हाथ मिलाते हुए बोले—अरे मिस्टर नसीम! तुम यहाँ कहाँ? भाई! तुमसे मिल कर बड़ा आनन्द हुआ।

मिस्टर नसीम कुँवर साहब के साथ देहरादून कालेज में पढ़ते थे। दोनों साथ-साथ देहरादून की पहाड़ियों पर सैर करने जाया करते थे, परन्तु जब से कुँवर महाशय ने घर की झंझटों से विवश हो कर कालेज छोड़ा, दोनों मित्रों में भेंट न हुई थी। नसीम भी उनके आने के कुछ समय पीछे अपने घर लखनऊ चले आये थे।

नसीम ने उत्तर दिया—शुक्र है, आपने पहचाना तो। कहिए अब तो पौ बारह है। कुछ दोस्तों की भी सुध है?

कुँवर—सच कहता हूँ, तुम्हारी याद हमेशा आया करती थी। कहो, आराम से तो हो? मैं रायल होटल में टिका हुआ हूँ, आज आओ, तो इतमीनान से बातचीत हो।

नसीम—जनाब, इतमीनान तो नेशनल बैंक के साथ चला गया। अब तो रोजी की फिक्र है। जो कुछ जमा-पूंजी थी, सब आपकी भेंट हुई। इस दीवाले ने फकीर बना दिया। अब आपके दरवाजे पर धरना दूँगा।

कुँवर—तुम्हारा घर है। बेखटके आओ। मेरे साथ ही क्यों न चलो। क्या बतलाऊँ, मुझे कुछ भी ध्यान न था, कि मेरे इनकार करने का यह असर होगा। जान पड़ता है, बैंक ने बहुतेरों को तबाह कर दिया।

नसीम—घर-घर मातम छाया हुआ है। मेरे पास तो इन कपड़ों के सिवा और कुछ नहीं रहा।

इतने में एक तिलकधारी पण्डित जी आ गये और बोले—महाराज, आपके शरीर पर वस्त्र तो है, यहाँ तो धरती-आकाश कहीं ठिकाना नहीं है। मैं राघोजी पाठशाला का अध्यापक हूँ। पाठशाला का सब धन इसी बैंक में जमा था। पचास विद्यार्थी इसी के आसरे संस्कृत पढ़ते थे और भोजन पाते थे। कल से पाठशाला बन्द हो जायगी। दूर-दूर के विद्यार्थी हैं। वे अपने घर किस प्रकार पहुँचेंगे, यह ईश्वर ही जानें।

एक महाशय जिनके सिर पर पंजाबी ढंग की पगड़ी थी, गाढ़े का कोट और चमरौधा जूता पहने हुए थे, आगे बढ़ आये और नेतृत्व के भाव से बोले—महाशय, इस बैंक के फेलियर ने कितने ही इन्सटीट्यूशनों को समाप्त कर दिया। लाला दीनानाथ का अनाथालय अब एक दिन भी नहीं चल सकता। उसका एक लाख रुपया डूब गया। अभी पन्द्रह दिन हुए मैं डेपुटेशन से लौटा, तो पन्द्रह हजार रुपये अनाथालय कोष में जमा किये थे, मगर अब कहीं कौड़ी का भी ठिकाना नहीं।

एक बूढ़े ने कहा—साहब, मेरी तो जिन्दगी-भर की कमाई मिट्टी में मिल गयी, अब कफन का भी भरोसा नहीं।

धीरे-धीरे और लोग एकत्र हो गये और साधारण बातचीत होने लगी। प्रत्येक मनुष्य अपने पास वाले को अपनी दुःख-कथा सुनाने लगा। कुँवर महोदय आध घंटे तक नसीम के साथ खड़े ये विपद् कथाएँ

सुनते रहे। ज्यों ही मोटर पर बैठे और होटल की ओर चलने की आज्ञा दी, त्यों ही उनकी दृष्टि एक मनुष्य पर पड़ी जो पृथ्वी पर सिर झुकाये बैठा था। यह एक अहीर था, लड़कपन में कुँवर साहब के साथ खेला था। उस समय उनमें ऊँच-नीच का विचार न था। साथ कबड्डी खेले थे। साथ पेड़ों पर चढ़े और चिड़ियों के बच्चे चुराये थे। जब कुँवर जी देहरादून पढ़ने गये, तब वह अहीर का लड़का शिवदास अपने बाप के साथ लखनऊ चला आया। उसने यहाँ एक दूध की दूकान खोल ली थी। कुँवर साहब ने उसे पहचाना और उच्च स्वर से पुकारा—अरे शिवदास! इधर देखो।

शिवदास ने बोली सुनी, परन्तु सिर ऊपर न उठाया। वह अपने स्थान से बैठा ही कुँवर साहब को देख रहा था। बचपन के वह दिन याद आ रहे थे, जब वह जगदीश के साथ गुल्ली-डंडा खेलता था, जब दोनों बुड्ढे गफूर मियाँ को मुँह चिढ़ा कर घर में छिप जाते थे, जब वह इशारे से जगदीश को गुरु जी के पास से बुला लेता और दोनों रामलीला देखने चले जाते। उसे विश्वास था कि कुँवर जी मुझे भूल गये होंगे। वह लड़कपन की बातें अब कहाँ? कहाँ मैं, कहाँ वह! लेकिन जब कुँवर साहब ने उसका नाम लेकर बुलाया तो उनसे प्रसन्न होकर मिलने के बदले उसने और भी सिर नीचा कर लिया और वहाँ से टल जाना चाहा। कुँवर साहब की सहृदयता में अब वह साम्य भाव न था। मगर कुँवर साहब उसे टलते देख कर मोटर से उतरे और उसका हाथ पकड़ कर बोले—अरे शिवदास, क्या मुझे भूल गये?

शिवदास अब अपने मनोवेग को रोक न सका। उसके नेत्र डब-डबा गये। कुँवर के गले लिपट गया और बोला—भूला तो नहीं, परन्तु आपके सामने आते हुए लज्जा आती है।

कुँवर—यहाँ दूध की दूकान करते हो क्या? मुझे मालूम ही न था, नहीं तो अठवारों से पानी पीते-पीते जुकाम क्यों होता? आओ, इस मोटर पर बैठ जाओ। मेरे साथ होटल तक चलो! तुमसे बातें करने

को जी चाहता है। तुम्हें वरहल ले चलूँगा और एक वार फिर गुल्ली-डंडा खेलेंगे।

शिवदास—ऐसा न कीजिए, नहीं तो देखनेवाले हँसेंगे। मैं होटल में आ जाऊँगा। वहीं हजरतगंजवाले होटल में ठहरे हैं न?

कुँवर—अवश्य आओगे न?

शिवदास—आप बुलायेंगे और मैं न आऊँगा?

कुँवर—यहाँ कैसे बैठे हो? दूकान तो चल रही है न?

शिवदास—आज सवेरे तक तो चलती थी। आगे का हाल नहीं मालूम?

कुँवर—तुम्हारे रुपये भी बैंक में जमा थे क्या?

शिवदास—जब आऊँगा तो बताऊँगा।

कुँवर साहब मोटर में जा बैठे और ड्राइवर से बोले—होटल की ओर चलो।

ड्राइवर—हुजूर ने ह्वाइट-वे कम्पनी की दूकान पर चलने की आज्ञा दी थी।

कुँवर—अब उधर न जाऊँगा।

ड्राइवर—जेकब साहब बारिस्टर के यहाँ भी न चलें?

कुँवर—(झुँझला कर) नहीं, कहीं मत चलो, मुझे सीधे होटल पहुँचाओ।

निराशा और विपत्ति के इन दृश्यों ने जगदीशसिंह के चित्त में यह प्रश्न उपस्थित कर दिया था कि 'अब मेरा कर्त्तव्य क्या है।'

६

आज से सात वर्ष पूर्व जब वरहल के महाराज ठीक युवावस्था में घोड़े से गिर कर मर गये थे, विरासत का प्रश्न उठा तो महाराज के कोई सन्तान न होने के कारण वंशक्रम मिलाने से उनके सगे चचेरे भाई ठाकुर रामसिंह को विरासत का हक पहुँचता था। उन्होंने दावा किया। लेकिन न्यायालयों ने रानी को हकदार ठहराया। ठाकुर साहब ने अपील की,

की, प्रिवी कौंसिल तक गये, परन्तु सफलता न मिली। मुकदमेबाजी में लाखों रुपये नष्ट हुए, अपने पास की मिलकियत भी हाथ से जाती रही, किन्तु हार कर भी वह चैन से नहीं बैठे। सदैव विधवा रानी को छेड़ते रहते। कभी असामियों को भड़काते, कभी हाकिमों से रानी की बुराई करते, कभी उन्हें जाली मुकदमों में फँसाने का उपाय करते। परन्तु रानी भी बड़े जीवट की स्त्री थीं। वह ठाकुर साहब के प्रत्येक आघात का मुँह-तोड़ उत्तर देतीं। हाँ, इस खींचातानी में उन्हें बड़ी-बड़ी रकमें व्यय करनी पड़तीं। असामियों से रुपये वसूल न होते। इसलिए उन्हें बारम्बार ऋण लेना पड़ता था। परन्तु कानून के अनुसार उन्हें ऋण लेने का अधिकार नहीं था। इसलिए उन्हें या तो इस अवस्था को छिपाना पड़ता था, या सूद की गहरी दर स्वीकार करनी पड़ती थी।

कुँवर जगदीशसिंह का लड़कपन तो लाड़-प्यार से बीता था; परन्तु जब ठाकुर रामसिंह मुकदमेबाजियों से तंग आ गये और यह सन्देह होने लगा कि कहीं रानी की चालों से कुँवर साहब का जीवन संकट में न पड़ जाय तो उन्होंने विवश हो कुँवर साहब को देहरादून भेज दिया। कुँवर साहब यहाँ दो वर्ष तक आनन्द से रहे किन्तु ज्यों ही कालेज की प्रथम श्रेणी में पहुँचे, ठाकुर साहब परलोकवासी हो गये। कुँवर साहब को शिक्षा-क्रम छोड़ना पड़ा। बरहल चले आये। सिर पर कुटुम्ब-पालन और रानी से पुरानी शत्रुता निभाने का बोझ आ पड़ा। उस समय से महारानी की मृत्युकाल तक उनकी दशा बहुत अवनत रही। ऋण या स्त्रियों के गहनों के सिवा और कोई आधार न था। उस पर कुल-मर्यादा-रक्षा की चिन्ता भी थी। यही तीन वर्ष उनके लिए कठिन परीक्षा का समय था। आये दिन साहूकारों से काम पड़ता था। उनके निर्दय बाणों से कलेजा छिद गया था, हाकिमों के कठोर व्यवहार और अत्याचार भी सहने पड़ते। परन्तु सबसे हृदय-विदारक अपने आत्मीयजनों का बर्ताव था, जो सामने घात न करके बगली चोटें करते थे, मित्रता और ऐक्य की आड़ में कपट का हाथ चलाते थे। इन कठोर यातनाओं ने कुँवर साहब

को अधिकार, स्वेच्छा और धनसम्पत्ति का जानी दुश्मन बना दिया था वे बड़े भावुक पुरुष थे। सम्बन्धियों की अकृपा और देशबन्धुओं की दुर्नीति उनके हृदय पर काले चिह्न बनाती जाती थी। साहित्य-प्रेम ने उन्हें मानव-प्रकृति का तत्वान्वेषी बना दिया था, और जहाँ यह ज्ञान उन्हें प्रति-दिन सभ्यता से दूर लिये जाता था, वहाँ उनके चित्त में जनसत्ता और साम्यवाद के विचार पुष्ट करता जाता था। उन पर प्रकट हो गया था कि यदि सद्व्यवहार जीवित है तो वह झोपड़ों और गरीबों में है। उस कठिन समय में जब चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था, उन्हें कभी-कभी सच्ची सहानुभूति का प्रकाश यहीं दृष्टिगोचर हो जाता था। धन-सम्पत्ति को वह श्रेष्ठ प्रसाद नहीं, ईश्वरीय प्रकोप समझते थे, जो मनुष्य के हृदय से दया और प्रेम के भावों को मिटा देती हैं। वह मेघ है जो चित्त के प्रकाशित तारों पर छा जाता है।

परंतु महारानी की मृत्यु के बाद ज्यों ही धन-सम्पत्ति ने उन पर वार किया, बस दार्शनिक तर्कों की वह ढाल चूर-चूर हो गयी। आत्मनिदर्शन की शक्ति नष्ट हो गयी। वे मित्र बन गये जो शत्रु सरीखे थे, और जो सच्चे हितैषी थे वे विस्मृत हो गये। साम्यवाद के मनोगत विचारों में घोर परिवर्तन आरम्भ हो गया। हृदय में सहिष्णुता का उद्भव हुआ। त्याग ने भोग की ओर सिर झुका दिया। मर्यादा की बेड़ी गले में पड़ी। वे अधिकारी जिन्हें देख कर उनके तीवर बदल जाते थे, अब उनके सलाहकार बन गये। दीनता और दरिद्रता को, जिससे उन्हें सच्ची सहानुभूति थी, देख कर अब वे आँखें मीच लेते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि कुँवर साहब अब भी साम्यवाद के भक्त थे, किन्तु उन विचारों के प्रकट करने में वह पहले की स्वतन्त्रता न थी। विचार अब व्यवहार से डरता था। कथन को कार्य रूप में परिणत करने का उन्हें अवसर प्राप्त न था, पर अब कार्य-क्षेत्र उन्हें कठिनाइयों से घिरा हुआ जान पड़ता था। बेगार के वह जानी दुश्मन थे, परन्तु अब बेगार को बन्द करना दुष्कर प्रतीत होता था। स्वच्छता और स्वास्थ्य-

रक्षा के वह भक्त थे, किन्तु अब धन-व्यय का ध्यान न करके भी उन्हें ग्रामवासियों की ही ओर से विरोध की शंका होती थी। असामियों से पोत उगाहने में कठोर वर्ताव को वह पाप समझते थे, मगर अब कठोरता के बिना काम न चलता जान पड़ता था। सारांश यह कि कितने ही सिद्धान्त, जिन पर उनकी श्रद्धा थी अब असंगत प्रतीत होते थे।

परन्तु आज जो दुःखजनक दृश्य बैङ्क के अहाते में नजर आये उन्होंने उनके दयाभाव को जाग्रत कर दिया। उस मनुष्य की-सी दशा हो गयी जो नौका में बैठा सुरम्य तट की शोभा का आनन्द उठाता हुआ किसी श्मशान के सामने आ जाय, चिता पर लाशें जलती देखे, शोक-सन्तप्तों के करुण क्रन्दन को सुने और नाव से उतरकर उनके दुःख में सम्मिलित हो जाय।

रात के दस बज गये। कुँवर साहब पलंग पर लेटे हुए थे। बैङ्क के अहाते का दृश्य आँखों के सामने नाच रहा था। वही विलाप-ध्वनि कानों में आ रही थी। चित्त में प्रश्न हो रहा था, क्या इस विडम्बना का कारण मैं हूँ? मैंने वही किया जिसका मुझे कानूनन अधिकार था। यह बैङ्क के संचालकों की भूल है कि उन्होंने बिना पूरी जमानत के इतनी बड़ी रकम कर्ज दे दी। लेनदारों को उन्हीं की गरदन नापनी चाहिए। मैं कोई खुदाई फौजदार नहीं हूँ कि दूसरों की नादानी का फल भोगूं। फिर विचार पलटा, मैं नाहक इस होटल में ठहरा। चालीस रुपये प्रति दिन देने पड़ेंगे। कोई चार सौ रुपये के मत्थे जायगी। इतना सामान भी व्यर्थ ही लिया, क्या आवश्यकता थी? मखमली गद्दे की कुर्सियों से या शीशे के सामानों की सजावट से मेरा गौरव नहीं बढ़ सकता। कोई साधारण मकान पाँच रुपये किराये पर ले लेता तो क्या काम न चलता! मैं और साथ के सब आदमी आराम से रहते। यही न होता, लोग निन्दा करते। इसकी चिन्ता क्या? जिन लोगों के मत्थे यह ठाट कर रहा हूँ वे गरीब तो रोटियों को तरसते हैं। यही दस-बारह हजार रुपये लगा कर कुएँ बनवा देता तो सहस्रों दीनों का भला होता।

अब फिर लोगों के चकमे में न आऊँगा। यह मोटर-कार व्यर्थ है। मेरा समय इतना मँहगा नहीं कि घंटे-आध घंटे की किफायत के लिए दो सौ रुपये महीने का खर्च बढ़ा लूं। फाका करने वाले आदमियों के सामने मोटर दौड़ाना उनकी छातियों पर मूंग दलना है। माना कि वह रोब में आ जायँगे। जिधर से निकल जाऊँगा सैकड़ों स्त्रियाँ और बच्चे देखने के लिए खड़े हो जायँगे। मगर केवल इतने दिखावे के लिए इतना खर्च बढ़ाना मूर्खता है। यदि दूसरे रईस ऐसा करते हैं तो करें, मैं उनकी बराबरी क्यों करूँ? अब तक दो हजार रुपये सालाना में मेरा निर्वाह हो जाता था। अब दो के बदले चार हजार बहुत हैं और फिर मुझे दूसरों की कमाई को इस प्रकार उड़ाने का अधिकार ही क्या है? मैं कोई उद्योग-धन्धा, कोई कारोबार नहीं करता, जिसका यह नफा हो। यदि मेरे पुरखों ने हठधर्मी और जबरदस्ती से इलाका अपने वश में कर लिया तो मुझे उनके लूट के धन में शरीक होने का क्या अधिकार है? जो लोग परिश्रम करते हैं, उन्हें अपने परिश्रम का पूरा फल मिलना चाहिए। राज्य उन्हें केवल दूसरों के कठोर हाथों से बचाता है। इस सेवा का उसे उचित मुआवजा मिलना चाहिए। बस, मैं तो राज्य की ओर से मुआवजा वसूल करने के लिए नियत हूँ। इसके अतिरिक्त इन गरीबों की कमाई में मेरा और कोई भाग नहीं है। यह बेचारे दीन हैं, मूर्ख हैं, बेजबान हैं। इस समय हम इन्हें चाहे जितना सता लें। इन्हें अपने स्वत्व का ज्ञान नहीं है। अपने महत्व को नहीं समझते, पर एक समय अवश्य आयेगा जब उनके मुँह में भी जबान होगी, अपने अधिकार का ज्ञान होगा और तब हमारी दशा भी बुरी होगी। ये भोग-विलास मुझे अपने असामियों से दूर किये देते हैं। मेरी बड़ाई इसी में है कि मैं इन्हीं में रहूँ, इन्हीं की भाँति जीवन निर्वाह करूँ और इनकी सहायता करूँ।

हाँ, तो इस बैङ्क का क्या करूँ? कोई छोटी-मोटी बात होती तो जिस तरह सिर पर बहुत से भार हैं उसी प्रकार इसे भी ले लेता, पर

असल और सूद के सिवा महाजनों के भी तीन लाख रुपये अलग आते हैं। रियासत की आमदनी डेढ़-दो लाख रुपया सालाना है, अधिक नहीं। मैं इतना बड़ा साहस करूँ तो किस बिरते पर? हाँ यदि वैरागी हो जाऊँ तो सम्भव है कि मेरे जीवन में—यदि कहीं अचानक मृत्यु न हो जाय तो यह झगड़ा पाक हो जाय। इस अग्नि में कूदना अपने सम्पूर्ण जीवन, अपनी उमंगों और अपनी आशाओं को भस्म करना है। आह! इस दिन की प्रतीक्षा में हमने क्या-क्या कष्ट नहीं भोगे? पिता जी ने इसी चिन्ता में प्राण त्याग किये। यह शुभ मुहूर्त हमारी अँधेरी रात के लिए दूर का दीपक था। हम इसी के आश्रय में जीवित थे। सोते-जागते सदैव इसी की चर्चा रहती थी। इससे चित्त को कितना सन्तोष और कितना अभिमान था। उपवास के दिन भी हमारे तेवर मैले न होते थे। जब इतने धैर्य और सन्तोष के बाद अच्छे दिन आये तो उनसे कैसे विमुख हुआ जाय? और फिर अपनी ही चिन्ता तो नहीं, रियासत की उन्नति की कितनी ही स्कीमें सोच चुका हूँ; क्या अपनी इच्छाओं के साथ उन विचारों को भी त्याग दूँ? इस अभागी रानी ने मुझे बुरी तरह फँसाया। जब तक जीती रही, कभी चैन से न बैठने दिया। मरी तो मेरे सिर यह बला डाल गयी। परन्तु मैं दरिद्रता से इतना डरता क्यों हूँ? दरिद्रता कोई पाप नहीं है। यदि मेरा त्याग हजारों घरानों को कष्ट और दुरवस्था से बचाये तो मुझे उससे मुँह न मोड़ना चाहिए। केवल सुख से जीवन व्यतीत करना ही हमारा ध्येय नहीं है। हमारी मान-प्रतिष्ठा और कीर्ति सुख-भोग से ही नहीं हुआ करती! राज-मन्दिरों में रहनेवाले और भोग-विलास में रत राणा प्रताप को कौन जानता? यह उनका आत्म-समर्पण और कठिन व्रत पालन ही है, जिसने उन्हें हमारी जाति का सूर्य बना दिया है। श्रीरामचन्द्र ने यदि अपना जीवन सुख-भोग में बिताया होता तो आज हम उनका नाम भी न जानते। उनके आत्म-बलिदान ने ही उन्हें अमर बना दिया है। हमारी प्रतिष्ठा, धन और विलास पर अवलम्बित नहीं है। मैं मोटर पर

4615

सवार हुआ तो क्या और टट्टू पर चढ़ा तो क्या ? होटल में ठहरा तो क्या और किसी मामूली घर में ठहरा तो क्या ? बहुत होगा तो ताल्लुकेदार लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे, इसकी परवा नहीं। मैं तो हृदय से चाहता हूँ कि उन लोगों से अलग रहूँ। यदि इतनी ही निन्दा से सैकड़ों परिवार का भला हो जाय, तो मैं मनुष्य नहीं, जो प्रसन्नता से उसे सहन न करूँ। यदि अपने घोड़े और फिटन, सैर और शिकार, नौकर-चाकर और स्वार्थ-साधक हित-मित्रों से रहित हो कर मैं सहस्रों अमीर-गरीब कुटुम्बों का, विधवाओं और अनाथों का भला कर सकूँ तो मुझे इसमें कदापि विलम्ब न करना चाहिए। सहस्रों परिवारों के भाग्य इस समय मेरी मुट्ठी में हैं। मेरा सुख-भोग उनके लिए विष और मेरा आत्म-संयम उनके लिए अमृत है। मैं अमृत बन सकता हुँ तो विष क्यों बनू ? और फिर इसे आत्म-त्याग समझना भी मेरी भूल है। यह एक संयोग है कि मैं आज इस जायदाद का अधिकारी हूँ। मैंने उसे कमाया नहीं, उसके लिए रक्त नहीं बहाया, पसीना नहीं बहाया। यदि वह जायदाद मुझे न मिली होती, तो मैं सहस्रों दीन भाइयों की भाँति आज जीविकोपार्जन में लगा रहता। मैं क्यों न भूल जाऊँ कि मैं इस राज्य का स्वामी हूँ। ऐसे ही अवसरों पर मनुष्य की परख होती है ! मैंने वर्षों पुस्तकावलोकन किया, वर्षों परोपकार-सिद्धान्त का अनुयायी रहा। यदि इस समय मैं उन सिद्धान्तों को भूल जाऊँ और स्वार्थ को मनुष्यत्व और सदाचार से बढ़ने दूँ, तो वस्तुतः यह मेरी अत्यन्त कायरता और स्वार्थ-परता होगी। भला स्वार्थ-साधन की शिक्षा के लिए गीता, मिल, एमर्सन और अरस्तू के शिष्य बनने की क्या आवश्यकता थी ? यह पाठ तो मुझे अपने दूसरे भाइयों से यों ही मिल जाता ? प्रचलित प्रथा से बढ़ कर और कौन गुरु था ? साधारण लोगों की भाँति क्या मैं भी स्वार्थ के सामने सिर झुका दूँ, तो फिर विशेषता क्या रही ? नहीं, मैं विवेक-बुद्धि का खून न करूँगा। जहाँ पुण्य कर सकता हूँ, वहाँ मैं पाप न करूँगा। परमात्मन् ! तुम मेरी सहायता करो, तुमने मुझे राजपूत के घर जन्म दिया है, मेरे कर्म

से इस महान् जाति को लज्जित न करो। नहीं, कदापि नहीं। यह गर्दन स्वार्थ के सम्मुख न झुकेगी। मैं राम, भीष्म और प्रताप का वंशज हूँ, शरीर का सेवक न बनूंगा।

कुँवर जगदीशसिंह को इस समय ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वे किसी ऊँचे मीनार पर चढ़ गये हैं, चित्त अभिमान से पूरित हो गया, आँखें प्रकाशमान हो गयीं। परन्तु एक ही क्षण में इस उमंग का उतार होने लगा। ऊँचे मीनार से नीचे की ओर आँखें गयीं, सारा शरीर काँप उठा। उस मनुष्य की-सी दशा हो गयी जो किसी नदी के तट पर बैठा हुआ उसमें कूदने का विचार कर रहा हो।

उन्होंने सोचा, क्या मेरे घर के लोग मुझसे सहमत होंगे? यदि मेरे कारण वे सहमत हो जायँ तो भी मुझे क्या अधिकार है कि अपने साथ उनकी इच्छाओं का भी बलिदान करूँ? और तो और, माता जी कभी न मानेंगी और कदाचित् भाई लोग भी अस्वीकार करें। रियासत की हैसियत देखते हुए वे कम-से-कम दस हजार सालाना के भागी हैं और उनके भाग में मैं किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मैं केवल अपना मालिक हूँ। परन्तु मैं भी अकेला नहीं हूँ। सावित्री चाहे स्वयं मेरे साथ आग में कूदने को तैयार हो, किन्तु अपने प्यारे राजपुत्र को इस आँच के समीप न आने देगी।

कुँवर महाशय और अधिक न सोच सके। वह विकल दशा में पलँग पर से उठ बैठे और कमरे में टहलने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने जँगले से बाहर की ओर झाँका और किवाड़ खोल कर बाहर चले आये। चारों ओर अँधेरा था। उनकी चिन्ताओं की भाँति सामने अपार और भयकारी गोमती नदी बहती थी। वह धीरे-धीरे नदी के तट पर गये और देर तक वहाँ टहलते रहे। आकुल हृदय को जल-तरंगों से प्रेम होता है, शायद इसलिए कि लहरें भी व्याकुल हैं। उन्होंने अपने चंचल चित्त को फिर एकाग्र किया। यदि रियासत की आमदनी से ये सब वृत्तियाँ दी जायँगी, तो ऋण का सूद निकलना भी कठिन होगा, मूल का क्या कहना है?

क्या आय में वढ़ती नहीं हो सकती ? अभी अस्तवल में बीस घोड़े हैं, मेरे लिए एक यथेष्ट है। नौकरों की संख्या सौ से कम नहीं होगी। मेरे लिए दो भी अधिक हैं। यह अनुचित है कि अपने ही भाइयों से नीच सेवाएँ करायी जायँ। उन मनुष्यों को मैं अपने सीर की जमीन दे दूँगा, सुख से खेती करेंगे और मुझे आशीर्वाद देंगे। वगीचे के फल अब तक दलियों के भेंट हो जाते थे। अब उन्हें वेचूंगा और सबसे बड़ी आमदनी तो वयाई की है। केवल महेशगंज के वाजार से दस हजार रुपये आते हैं। यह सब आमदनी महन्त जी उड़ा जाते हैं। उनके लिए एक हजार रुपये साल बहुत होने चाहिए। अबकी इस वाजार का ठीका करूँगा। आठ हजार से कम न मिलेंगे। इन मदों से २५ हजार वार्षिक आय होगी। सावित्री और लल्ला (लड़का) के लिए एक हजार रुपया माहवार काफी है। मैं सावित्री से स्पष्ट कह दूंगा कि या तो एक हजार मासिक लो और मेरे साथ रहो या रियासत की आधी आमदनी ले लो और मुझे छोड़ दो। रानी वनने की इच्छा हो, तो खुशी से वनो, परन्तु मैं राजा न वनूंगा।

अचानक कुँवर साहव के कानों में आवाज आयी 'राम नाम सत्य है।' उन्होंने पीछे मुड़ कर देखा। कई मनुष्य एक लाश को लिये आते थे। उन लोगों ने नदी के तीर चिता सजायी और आग लगा दी। स्त्रियाँ चीत्कार कर रो रही थीं। इस विलाप का साहव के चित्त पर कुछ प्रभाव न पड़ा। वह चित्त में लज्जित हो रहे थे कि मैं कितना पाषाण-हृदय हूँ। एक दीन मनुष्य की लाश जल रही है, स्त्रियाँ रो रही हैं और मेरा हृदय तनिक भी नहीं पसीजता। पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ा हूँ। एकवारगी एक स्त्री ने रोते हुए कहा, 'हाय मेरे राजा ! तुम्हें विष कैसे मीठा लगा ?' यह हृदय-विदारक विलाप सुनते ही कुंवर साहव के चित्त में एक घाव लग गया। करुणा सजग हो गयी और नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गये। कदाचित् इस दुखिया ने विष-पान करके प्राण दिये हैं। हाय ! उसे विष कैसे मीठा लगा ! इसमें कितनी करुणा है। कितना

दुःख ! कितना आश्चर्य ! विष तो कड़वा पदार्थ है। वह क्योंकर मीठा हो गया ? कटु विष के बदले जिसने अपने मधुर प्राण दे दिये, उस पर कोई बड़ी मुसीबत पड़ी होगी। ऐसी ही दशा में विष मधुर हो सकता है। कुँवर साहब तड़प गये। कारुणिक शब्द बार-बार उनके हृदय में गूँजते थे। अब उनसे वहाँ खड़ा न रहा गया। वह उन आदमियों के पास आये और एक मनुष्य से पूछा, 'क्या बहुत दिनों से बीमार थे ?' इस मनुष्य ने कुँवर साहब की ओर आँसू भरे नेत्रों से देख कर कहा, 'नहीं साहब, कहाँ की बीमारी, अभी आज सन्ध्या तक भलीभाँति बातें कर रहे थे। मालूम नहीं, सन्ध्या को क्या खा लिया, कि अचानक कै होने लगी। जब तक वैद्यराज के यहाँ जायँ, तब तक आँखें उलट गयीं, नाड़ी छूट गयी। वैद्यराज ने आ कर देखा, तो कहा, अब क्या हो सकता है ? अभी कुल बाईस-तेईस वर्ष की अवस्था थी। ऐसा पट्ठा सारे लखनऊ में नहीं था।'

कुँवर—कुछ मालूम हुआ, विष क्यों खाया ?

उस मनुष्य ने सन्दिग्ध दृष्टि से देख कर कहा—महाशय ! और तो कोई बात नहीं हुई। जब से यह बड़ा बैंक टूटा है तब से ये बहुत उदास रहा करते थे। कई हजार रुपये बैंक में जमा किये थे। घी, दूध, मलाई की बड़ी दूकान थी। बिरादरी में मान था। वह सारी पूँजी डूब गयी। हम लोग रोकते रहे कि बैंक में रुपया मत जमा करो; किन्तु होनहार तो यह थी, किसी की न सुनी। आज सवेरे स्त्री से गहने माँगते थे कि बन्धक रख कर अहीरों को दूध का दाम दे दें। उससे बातों-बातों में झगड़ा हो गया। बस, न जाने कब क्या खा लिया।

कुँवर साहब का हृदय काँप उठा, तुरन्त ध्यान आया, शिवदास तो नहीं है। पूछा, 'इनका नाम शिवदास तो नहीं था,' उस मनुष्य ने विस्मय से देख कर कहा, 'हाँ यही नाम था, क्या आपसे जान-पहचान थी ?'

कुँवर—हाँ, हम और वह बहुत दिनों तक बरहल में साथ-साथ खेले थे। आज शाम को वह हमसे बैंक में मिले थे। यदि उन्होंने मुझसे

तनिक भी चर्चा की होती, तो मैं यथाशक्ति उनकी सहायता करता—शोक !

उस मनुष्य ने अब ध्यानपूर्वक कुँवर साहब को देखा और जा कर स्त्रियों से कहा, 'चुप हो जाओ, वरहल के महाराज आये हैं।' इतना सुनते ही शिवदास की माता ने जोर-जोर से सिर पीटा और रोती हुई आ कर कुँवर के पैरों पर गिर पड़ी। उसके मुख से केवल यह शब्द निकले—बेटा, बचपन में जिसे तुम भैया कहा करते थे...और गला फँस गया।

कुँवर महाशय की आँखों से भी अश्रुपात हो रहा था। शिवदास की मूर्ति उनके सामने खड़ी यह कहती हुई दीख पड़ती थी, तुमने मित्र हो कर मेरे प्राण लिये !

७

भोर हो गया, पर कुँवर साहब को नींद नहीं आयी। जब से वह गोमती तीर से लौटे थे, उनके चित्त पर एक वैराग्य-सा छाया हुआ था। वह कारुणिक दृश्य, उनके स्वार्थपूर्ण तर्कों को छिन्न-भिन्न किये देता था। सावित्री के विरोध, लल्ला के निराशायुक्त हठ और माता के क्रुद्ध शब्दों का उन्हें लेश-मात्र भी भय न था। सावित्री कुढ़ेगी, कुढ़े। लल्ला को भी संग्राम के क्षेत्र में कूदना पड़ेगा, कोई चिन्ता नहीं। माता प्राण देने पर तत्पर होंगी, क्या हर्ज है ! मैं अपनी स्त्री-पुत्र तथा हितू-मित्रादि के लिए सहस्रों परिवारों की हत्या न करूँगा। हाय ! शिवदास को जीवित रखने के लिए मैं ऐसी कितनी रियासतें छोड़ सकता हूँ। सावित्री को भूखों मरना पड़े, लल्ला को मजदूरी करनी पड़े, मुझे द्वार-द्वार भीख माँगनी पड़े, तब भी दूसरों का गला न दबाऊँगा। अब विलम्ब का अवसर नहीं है, न जाने आगे यह दिवाला और क्या-क्या विपत्तियाँ खड़ी करे। मुझे इतना आगा-पीछा क्यों हो रहा है ? यह केवल आत्म-निर्बलता है। वरना यह कोई ऐसा बड़ा काम नहीं, जो किसी ने न किया हो। आये दिन लोग लाखों रुपये दान-पुण्य करते हैं। मुझे अपने

कर्तव्य का ज्ञान है। उससे क्यों मुँह मोड़ूँ? जो कुछ हो, चाहे सिर पर आ पड़े, इसकी क्या चिन्ता? घंटी बजायी, एक क्षण में अरदली आँखें मलता हुआ आया।

कुँवर साहब बोले—अभी जेकब साहब बारिस्टर के पास जा कर मेरा सलाम दो। जग गये होंगे। कहना, जरूरी काम है। नहीं, यह पत्र लेते जाओ। मोटर तैयार करा लो।

८

मिस्टर जेकब ने कुँवर साहब को बहुत समझाया कि आप इस दल-दल में न फँसें, नहीं तो निकलना कठिन होगा। मालूम नहीं, अभी कितनी ऐसी रकमें हैं, जिसका आपको पता नहीं है। परन्तु चित्त में दृढ़ हो जानेवाला निश्चय चूने का फर्श है, जिसको आपत्ति के थपेड़े और भी पुष्ट कर देते हैं। कुँवर साहब अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। दूसरे दिन समाचार-पत्रों में छपवा दिया कि मृतक महारानी पर जितना कर्ज है, वह हम सकारते हैं और नियत समय के भीतर चुका देंगे।

इस विज्ञापन के छपते ही लखनऊ में खलबली मच गयी। बुद्धिमानों की सम्मति में यह कुँवर महाशय की नितान्त भूल थी और जो लोग कानून से अनभिज्ञ थे, उन्होंने सोचा कि इसमें अवश्य कोई भेद है। ऐसे बहुत कम मनुष्य थे, जिन्हें कुँवर साहब की नीयत की सच्चाई पर विश्वास आया हो। परन्तु कुँवर साहब का बखान चाहे न हुआ हो, आशीर्वाद की कमी न थी। बैंक के हजारों गरीब लेनदार सच्चे हृदय से उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे।

एक सप्ताह तक कुँवर साहब को सिर उठाने का अवकाश न मिला। मिस्टर जेकब का विचार सत्य हुआ। देना प्रतिदिन बढ़ता जाता था। कितने नोट ऐसे मिले जिनका उन्हें कुछ भी पता न था। जौहरियों और अन्य बड़े-बड़े दूकानदारों का लेना भी कम न था—अनुमान तेरह-चौदह लाख का था। मीजान बीस लाख तक जा पहुँचा। कुँवर साहब घबराये। शंका हुई, ऐसा न हो कि मुझे भाइयों का गुजारा

भी बन्द करना पड़े, जिसका उन्हें कोई अधिकार नहीं था। यहाँ तक कि सातवें दिन उन्होंने कई साहूकारों को बुरा-भला कहकर सामने से दूर किया। जहाँ ब्याज दर अधिक थी उसे कम कराया और जिन रकमों की मियाद बीत चुकी थी, उन्हें नकार दिया।

उन्हें साहूकारों की कठोरता पर क्रोध आता था। उनके विचार में महाजनों को डूबते धन का एक भाग पा कर ही सन्तोष कर लेना चाहिए था। इतनी खींचातानी करने पर भी कुल देना उन्नीस लाख से कम न हुआ।

कुँवर साहब इन कामों से अवकाश पा कर एक दिन नेशनल बैंक की ओर जा निकले। बैंक खुला हुआ था। मृतक शरीर में प्राण आ गये थे। लेनदारों की भीड़ लगी हुई थी। लोग प्रसन्न चित्त लौटे जा रहे थे। कुँवर साहब को देखते ही सैकड़ों मनुष्य बड़े प्रेम से उनकी ओर दौड़े, किसी ने रो कर, किसी ने पैरों पर गिर कर और किसी ने सभ्यतापूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट की। वे बैंक के कार्यकर्त्ताओं से भी मिले। लोगों ने कहा, इस विज्ञापन ने बैंक को जीवित कर दिया। बंगाली बाबू ने लाला साईंदास की आलोचना की—वह समझता था, संसार में सब मनुष्य भलामानुष है। हमको उपदेश करता था। अब उसका आँख खुल गया है। अकेला घर में बैठा रहता है। किसी को मुँह नहीं दिखाता। हम सुनता है वह यहाँ से भाग जाना चाहता था। परन्तु बड़ा साहब बोला, तुम भागेगा तो तुम्हारा ऊपर वारंट जारी कर देगा।

अब साईंदास की जगह बंगाली बाबू मैनेजर हो गये।

इसके बाद कुँवर साहब बरहल आये। भाइयों ने यह वृत्तान्त सुना तो बिगड़े, अदालत की धमकी दी। माता जी को ऐसा धक्का पहुँचा कि वह उसी दिन बीमार हो गयीं और एक ही सप्ताह में इस संसार से विदा हो गयीं। सावित्री को भी चोट लगी, पर उसने केवल सन्तोष ही नहीं किया, पति की उदारता और त्याग की प्रशंसा भी की। रह गये लाला साहब। उन्होंने जब देखा कि अस्तबल से घोड़े निकले जाते हैं,

हाथी मदनपुर के मेले में विकने के लिए भेज दिये गये हैं, कहार विदा किये जा रहे हैं, तो व्याकुल हो पिता जी से बोले—बाबू जी, यह सब नौकर, घोड़े, हाथी कहाँ जा रहे हैं ?

कुँवर—एक राजा साहब के उत्सव में ।

लाला जी—कौन से राजा ?

कुँवर—उनका नाम राजा दीनसिंह है ।

लाला जी—कहाँ रहते हैं ?

कुँवर—दरिद्रपुर ।

लाला जी—तो हम भी जायँगे ।

कुँवर—तुम्हें भी ले चलेंगे, परन्तु इस बारात में पैदल चलनेवालों का सम्मान सवारों से अधिक होगा ।

लाला जी—तो हम भी पैदल चलेंगे ।

कुँवर—वहाँ परिश्रमी मनुष्यों की प्रशंसा होती है ।

लाला जी—तो हम सबसे ज्यादा परिश्रम करेंगे ।

९

कुँवर साहब के दोनों भाई पाँच-पाँच हजार रुपये का गुजारा ले कर अलग हो गये । कुँवर साहब अपने और अपने परिवार के लिए कठिनाई से एक हजार सालाना का प्रबन्ध कर सके, परन्तु यह आमदनी एक रईस के लिए किसी तरह पर्याप्त नहीं है । अतिथि-अभ्यागत प्रति दिन टिके ही रहते हैं । उनका भी सत्कार करना पड़ता है । बड़ी कठिनाई से निर्वाह होता है । इधर एक वर्ष से शिवदास के कुटुम्ब का भार भी सिर पर आ पड़ा । परन्तु कुँवर साहब कभी अपने निश्चय पर शोक नहीं करते । उन्हें कभी किसी ने चिन्तित नहीं देखा । उनका मुखमण्डल धैर्य और सच्चे अभिमान से सदैव प्रकाशित रहता है । साहित्य-प्रेम पहले से था । अब बागवानी से प्रेम हो गया है । अपने बाग में प्रातःकाल से शाम तक पौधों की देख-रेख किया करते हैं और लाला साहब तो पक्के कृषक होते दिखायी देते हैं । अभी नौ-दस वर्ष से

अधिक अवस्था नहीं है, लेकिन अँधेरे मुँह खेतों में पहुँच जाते हैं। खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती।

उनका घोड़ा मौजूद है। परन्तु महीनों उस पर नहीं चढ़ते। उनकी यह धुन देख कर कुँवर साहब प्रसन्न रहते हैं और कहा करते हैं, मैं रियासत के भविष्य की ओर से निश्चिन्त हूँ। लाला साहब कभी इस पाठ को न भूलेंगे। घर में सम्पत्ति होती तो सुख-भोग, आखेट और दुराचार के सिवा और क्या सूझता! सम्पत्ति बेच कर हमने परिश्रम और सन्तोष खरीदा और यह सौदा बुरा नहीं। सावित्री इतनी सन्तोषी नहीं। वह कुँवर साहब के रोकने पर भी असामियों से छोटी-मोटी भेंट ले लिया करती है और कुल-प्रथा नहीं छोड़ना चाहती।

शान्ति

जब मैं ससुराल आयी तो बिलकुल फूहड़ थी। न पहनने-ओढ़ने का शऊर, न बातचीत करने का ढंग। सिर उठा कर किसी से बात-चीत न कर सकती थी। आँख अपने-आप झपक जाती थी। किसी के सामने जाते शरम आती, स्त्रियों तक के सामने बिना घूँघट के झिझक होती थी। मैं कुछ हिन्दी पढ़ी हुई थी, पर उपन्यास-नाटकादि के पढ़ने में आनन्द न आता था। फुर्सत मिलने पर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। मैं उसे मनुष्य-कृत नहीं समझती थी। मुझे पूरा-पूरा विश्वास था कि उसे किसी देवता ने स्वयं रचा होगा। मैं मनुष्य को इतना उच्च तथा विचारवान् न समझती थी। मैं दिन-भर घर का कोई-न-कोई काम करती रहती और कोई काम न रहता तो चर्खे पर सूत कातती थी। अपनी बूढ़ी सास से थर-थर काँपती थी। एक दिन दाल में नमक अधिक हो गया, ससुर जी ने भोजन के समय सिर्फ इतना ही कहा, 'नमक जरा अन्दाज से डाला करो।' इतना सुनते ही हृदय काँपने लगा। मानो मुझे इससे अधिक कोई वेदना नहीं पहुँचायी जा सकती थी।

लेकिन मेरा यह फूहड़पन मेरे बाबू जी (पतिदेव) को पसन्द न आता था। वह वकील थे। उन्होंने शिक्षा की ऊँची-से-ऊँची डिगरियाँ पायी थीं। वह मुझ पर प्रेम अवश्य करते थे, पर उस प्रेम में दया की मात्रा अधिक होती। स्त्रियों के रहन-सहन और शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत ही उदार थे। वह मुझे उन विचारों से बहुत ही नीचे देख कर कदाचित् मन-ही-मन खिन्न होते थे, परन्तु उसमें मेरा कोई अपराध न देख कर वह रीति-रिवाज पर झुँझलाते थे। उन्हें मेरे साथ बैठ कर बातचीत करने में जरा भी आनन्द न आता था। सोने आते तो कोई-न-कोई अँगरेजी पुस्तक साथ लाते और नींद न आने तक पढ़ा करते। जो कभी मैं पूछ बैठती कि क्या पढ़ते हो तो मेरी ओर करुण-दृष्टि से उत्तर देते—तुम्हें क्या बतलाऊँ, यह आसकर वाइल्ड की सर्व-श्रेष्ठ रचना है! मैं अपनी अयोग्यता पर लज्जित थी। मन में आता, मैं ऐसे उच्च विचारवाले पुरुष के योग्य नहीं हूँ। मुझे तो किसी उजड्ड के घर पड़ना था। बाबू जी मुझे निरादर की दृष्टि से नहीं देखते थे। यही मेरे लिए सौभाग्य की बात थी!

एक दिन सन्ध्या समय मैं रामायण पढ़ रही थी। भरत जी राम-चन्द्र की खोज में निकले थे। उनका करुण-विलाप तथा वार्तालाप पढ़-कर मेरा हृदय गद्गद् हो रहा था। नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी, हृदय उमड़ा आता था कि इतने में बाबू जी कमरे में आये और मैंने तुरन्त पुस्तक बन्द कर दी। उनके सामने मैं अपने फूहड़पन को भर-सक प्रकट न होने देती। लेकिन उन्होंने पुस्तक देख ली; पूछा, रामायण है न?

मैंने अपराधियों की भाँति देखते हुए कहा—हाँ जरा देख रही थी।

बाबू जी—इसमें शक नहीं कि पुस्तक बहुत ही अच्छी है, भावों से भरी हुई है, लेकिन इसमें मानव-चरित्र को वैसी खूबी से नहीं दिखाया गया है, जैसा अँग्रेज या फ्रांसीसी लेखक दिखलाते हैं। तुम्हारी समझ में तो न आयगा, लेकिन कहने में क्या हर्ज है, यूरोप में आजकल

'स्वाभाविकता' (Realism) का जमाना है, वे लोग मनोभावों के उत्थान और पतन का ऐसा वास्तविक वर्णन करते हैं कि पढ़ कर आश्चर्य होता है। हमारे यहाँ कवियों को पग-पग पर धर्म तथा नीति का ध्यान रखना पड़ता है इसलिए कभी-कभी उनके भावों में अस्वाभाविकता आ जाती है और यही त्रुटि तुलसीदास में भी है।

मेरी समझ में उस समय कुछ भी न आया, बोली—मेरे लिए यही बहुत है, अँगरेजी पुस्तकें कैसे समझूं?

बाबू जी—कोई कठिन बात नहीं है। एक घंटा भी रोज पढ़ो तो थोड़े समय में यथेष्ट योग्यता प्राप्त कर सकती हो, पर तुमने तो मेरी बात न मानने की सोगन्ध खा ली है। तुम्हें कितना समझाया कि मुझसे शर्म करने की आवश्यकता नहीं, पर तुम्हारे ऊपर कुछ प्रभाव न पड़ा। कितना कहता हूँ कि जरा स्वच्छ रहा करो, परमात्मा सुन्दरता देता है तो चाहता है कि उसका शृङ्गार भी होता रहे, लेकिन जान पड़ता है कि तुम्हारी दृष्टि में उसकी कुछ भी मर्यादा नहीं है या शायद तुम समझती हो कि मेरे ऐसे कुरूप मनुष्य के लिए तुम चाहे जैसे भी रहो, आवश्यकता से अधिक अच्छी हो। मानो यह अत्याचार मेरे ऊपर है। तुम मुझे ठोंक-पीट कर वैराग्य सिखाना चाहती हो। जब मैं दिन-रात मेहनत करके कमाता हूँ तो स्वभावतः मेरी इच्छा होती है कि उस द्रव्य का सबसे उत्तम व्यय हो, परन्तु तुम्हारा फूहड़पन और पुराने विचार मेरे परिश्रम पर पानी फेर देते हैं। स्त्रियाँ केवल भोजन बनाने, बच्चे पालने, पति की सेवा करने और व्रत-उपवास रखने के लिए नहीं हैं, उनके जीवन का लक्ष्य उनसे बहुत ऊँचा है। वह मनुष्य के समस्त सामाजिक और मानसिक विषयों में समान रूप से भाग लेने की अधिकारिणी हैं! उन्हें मनुष्यों की भाँति स्वतंत्र रहने का भी अधिकार प्राप्त है। मुझे तुम्हारी यह बन्दी दशा देखकर बड़ा कष्ट होता है। स्त्री पुरुष की अर्धाङ्गिनी मानी गयी है, लेकिन तुम मेरी मानसिक या सामाजिक किसी आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर सकती हो। मेरा और तुम्हारा धर्म अलग, आचार-

विचार अलग, आमोद-प्रमोद के विषय अलग। जीवन के किसी कार्य में मुझे तुमसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती। तुम स्वयं विचार सकती हो कि ऐसी दशा में मेरी जिन्दगी कैसी बुरी तरह कट रही है!

बाबू जी का कहना बिलकुल यथार्थ था। मैं उनके गले में एक जंजीर की भाँति पड़ी हुई थी। उस दिन से मैंने उन्हीं के कहे अनुसार चलने की प्रतिज्ञा कर ली। अपने देवता को किस भाँति अप्रसन्न करती।

२

यह कैसे कहूँ कि मुझे पहनने-ओढ़ने से प्रेम था ही नहीं। था और उतना ही था, जितना दूसरी स्त्रियों को होता है। जब बालक और युवा पुरुष तक शृंगार पसन्द करते हैं तो मैं तो स्त्री ठहरी! मन भीतर-ही-भीतर मचलकर रह जाता था। दूसरे मेरे मैके में मोटा खाने और मोटा पहनने की चाल थी। मेरी माँ और दादी हाथों से सूत काततीं और जुलाहे से उसी के कपड़े बुनवा लिये जाते। बाहर से बहुत कम कपड़े आते थे। मैं कभी जरा भी महीन कपड़ा बनवाना चाहती और शृंगार की ओर रुचि दिखाती तो वे फौरन टोकतीं और समझातीं कि साज-समाज भले घर की लड़कियों को शोभा नहीं देते। ऐसी आदत अच्छी नहीं। यदि कभी मुझे दर्पण के सामने देख लेतीं तो झिड़कने लगतीं। परन्तु अब बाबू जी की जिद से मेरी वह झिझक जाती रही। मेरी सास और ननदें मेरे बनाव-शृंगार पर नाक-भौं सिकोड़तीं, पर मुझे अब उनकी परवाह न थी। बाबू जी की प्रेम-परिपूर्ण दृष्टि के लिए मैं झिड़कियाँ भी सह सकती थी। अब उनके और मेरे विचारों में समानता आती जाती थी। वह अधिक प्रसन्नचित जान पड़ते थे। वह मेरे लिए फैशनेबुल साड़ियाँ, सुन्दर जाकटें, गाउन, चमकते हुए जूते और कामदार स्लीपर लाया करते; पर मैं इन वस्तुओं को धारण कर किसी के सामने न निकलती, ये वस्त्र केवल बाबू जी के ही सामने पहनने के लिए रखे थे। मुझे इस प्रकार बनी-ठनी देख कर उन्हें प्रसन्नता होती थी। उनकी प्रसन्नता

के लिए मैं क्या नहीं कर सकती ? अब घर के काम-काज में मेरा जी न लगता, मेरा सारा समय बनाव-शृंगार तथा पुस्तकावलोकन में ही बीतने लगा। पुस्तकों से मुझे प्रेम होने लगा था।

यद्यपि अब तक मैं अपने सास-ससुर का लिहाज करती थी, उनके सामने बूट और गाउन पहन कर निकलने का साहस न होता था, पर मुझे उनकी अभिमान-पूर्ण बात न भाती थी। मैं सोचती, जब मेरा पति सैकड़ों रुपए महीने कमाता है तो घर में मैं चेरी बनकर क्यों रहूँ ? यों अपनी इच्छा से चाहे जितना काम करूँ, पर वे मुझे आज्ञा देनेवाले कौन होते हैं ? मुझमें आत्माभिमान की मात्रा बढ़ने लगी। यदि अम्माँ मुझे कोई काम करने को कहतीं तो मैं अदबदा के उसे टाल जाती। एक दिन उन्होंने कहा, सवेरे के जलपान के लिए कुछ दालमोठ बना लो। मैं बात अनसुनी कर गयी। अम्माँ ने कुछ देर तक मेरी बाट देखी, पर जब मैं अपने कमरे से न निकली तो उन्हें गुस्सा चढ़ आया। वह बड़ी ही चिड़चिड़ी प्रकृति की थीं। तनिक-सी बात पर तिनक जाती थीं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का इतना अभिमान था कि मुझे बिलकुल लौंडी ही समझती थीं। लेकिन अपनी पुत्रियों से सदैव नम्रता से पेश आतीं; बल्कि मैं तो कहूँगी कि उन्हें सिर चढ़ा रखा था। वह क्रोध में भरी हुई मेरे कमरे के द्वार पर आकर बोलीं, तुमसे मैंने दाल मोठ बनाने को कहा था, बनाया ? मैं कुछ रुष्ट होकर बोली, अभी फुर्सत नहीं मिली।

अम्माँ—तो तुम्हारी जान में दिन-भर पड़े रहना ही बड़ा काम है ? यह आजकल तुम्हें हो क्या गया है ? किस घमंड में हो ? क्या यह सोचती हो कि मेरा पति कमाता है, तो मैं काम क्यों करूँ ? इस घमंड में न भूलना ! तुम्हारा पति लाख कमाये, लेकिन घर में राज मेरा ही रहेगा। आज वह चार पैसे कमाने लगा है, तो तुम्हें मालकिन बनने की हवस हो रही है। लेकिन उसे पालने-पोसने तुम नहीं आती थी, मैंने ही उसे पढ़ा-लिखा कर इस योग्य बनाया है। कल की छोकरी और अभी से यह गुमान !

मैं रोने लगी। मुँह से एक बात न निकली। बाबू जी उस समय ऊपर कमरे में बैठे कुछ पढ़ रहे थे। यह बातें उन्होंने ,सुनीं, उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। रात को जब वह घर में आये तो बोले, देखा, तुमने आज अम्माँ का क्रोध! यही अत्याचार है, जिससे स्त्रियों को अपनी जिन्दगी पहाड़ मालूम होने लगती है। इन बातों से हृदय में कितनी वेदना होती है, इसका जानना असम्भव है। जीवन भार हो जाता है, हृदय जर्जर हो जाता है, और मनुष्य की आत्मोन्नति उसी प्रकार रुक जाती है, जैसे जल, धूप और वायु के बिना पौधे सूख जाते हैं। हमारे घरों में यह बड़ा अन्धेर है। अब मैं तो उनका पुत्र ही ठहरा, उनके सामने मुँह नहीं खोल सकता। मेरे ऊपर उनका बहुत बड़ा अधिकार है। अतएव उनके विरुद्ध एक शब्द भी कहना मेरे लिए लज्जा का विषय होगा और यही बन्धन तुम्हारे लिए भी है। यदि तुमने उनकी बातें चुपचाप न सुन ली होतीं तो मुझे बहुत ही दुःख होता—कदाचित् मैं विष खा लेता। ऐसी दशा में दो ही बातें सम्भव हैं—या तो सदैव उनकी घुड़कियों-झिड़कियों को सहे जाओ या अपने लिए कोई दूसरा रास्ता ढूंढ़ो। अब इस बात की आशा करना कि अम्माँ के स्वभाव में कोई परिवर्तन होगा बिलकुल असम्भव है। बोलो, तुम्हें क्या स्वीकार है?

मैंने डरते-डरते कहा, आपकी जो आज्ञा हो वह करूँ। अब कभी न पढ़ूँ-लिखूँगी। जो कुछ वह कहेंगी, वही करूँगी। यदि वह इसी में प्रसन्न हैं तो यही सही, मुझे पढ़-लिखकर क्या करना है!

बाबू जी—पर यह मैं नहीं चाहता। अम्माँ ने आज आरम्भ किया है। अब बढ़ती ही जायँगी। मैं तुम्हें जितना ही सभ्य तथा विचारशील बनाने की चेष्टा करूँगा, उतना ही उन्हें बुरा लगेगा और उनका गुस्सा तुम पर निकलेगा। उन्हें पता नहीं कि जिस आबहवा में उन्होंने अपनी जिन्दगी बितायी है, वह अब नहीं रही। विचार-स्वातन्त्र्य और समयानुकूलता उनकी दृष्टि में अधर्म से कम नहीं। मैंने यह उपाय सोचा है कि किसी दूसरे शहर में चल कर अपना अड्डा जमाऊँ। मेरी वकालत

भी यहाँ 'नहीं चलती, इसलिए किसी बहाने की भी आवश्यकता न पड़ेगी।

मैं इस तजवीज के विरुद्ध कुछ न बोली। यद्यपि मुझे अकेले रहने से भय लगता था, तथापि वहाँ स्वतन्त्र रहने की आशा ने मन को प्रफुल्लित कर दिया।

३

उसी दिन से अम्माँ ने मुझसे बोलना छोड़ दिया। महरियों, पड़ोसिनों और ननदों में मेरा परिहास किया करतीं। यह मुझे बहुत बुरा मालूम होता था। इसके बदले यदि वह मुझे कुछ भली-बुरी बातें कह लेतीं, तो मुझे स्वीकार था। मेरे हृदय से उनकी मान-मर्यादा घटने लगी। किसी मनुष्य पर इस प्रकार कटाक्ष करना उसके हृदय से अपने आदर को मिटाने के समान है। मेरे ऊपर सबसे गुरुतर दोषारोपण यह था कि मैंने बाबू जी पर कोई मोहन-मंत्र फूँक दिया है, वह मेरे इशारों पर चलते हैं, और यथार्थ में बात उल्टी ही थी।

भाद्र मास था। जन्माष्टमी का त्योहार आया। घर में सब लोगों ने व्रत रखा। मैंने भी सदैव की भाँति व्रत रखा। ठाकुर जी का जन्म रात को बारह बजे होने वाला था, हम सब बैठी गाती-बजाती थीं। बाबू-जी इन असभ्य व्यवहारों के बिल्कुल विरुद्ध थे। वह होली के दिन रंग भी न खेलते, गाने-बजाने की तो बात ही अलग। रात को एक बजे जब मैं उनके कमरे में गयी तो मुझे समझाने लगे, इस प्रकार शरीर को कष्ट देने से क्या लाभ! कृष्ण महापुरुष अवश्य थे और उनकी पूजा करना हमारा कर्त्तव्य है, पर इस गाने-बजाने से क्या फायदा? इस ढोंग का नाम धर्म नहीं है। धर्म का सम्बन्ध सचाई और ईमान से है, दिखावे से नहीं।

बाबू जी स्वयं इसी मार्ग का अनुसरण करते थे। वह भगवद्गीता की अत्यन्त प्रशंसा करते और मानते थे, पर उसका पाठ कभी न करते। उपनिषदों की प्रशंसा में उनके मुख से मानों पुष्पवृष्टि होने लगती, पर

मैंने उन्हें कोई उपनिषद् पढ़ते नहीं देखा। वह हिन्दू-धर्म के गूढ़ तत्वज्ञान पर लट्टू थे, पर इसे समयानुकूल न समझते थे। विशेषकर वेदान्त को तो भारत की अवनति का मूल कारण समझते थे। वह कहा करते कि इसी वेदान्त ने हमको चौपट कर दिया। हम दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझने लगे, जिसका फल अब तक भुगत रहे हैं। अब उन्नति का समय है। चुपचाप बैठे रहने से निर्वाह नहीं, सन्तोष ने ही भारत को गारत कर दिया।

उस समय उनको उत्तर देने की शक्ति मुझमें कहाँ थी? हाँ अब जान पड़ता है कि वह यूरोपीय सभ्यता के चक्कर में पड़े हुए थे। अब वह स्वयं ऐसी बातें नहीं करते, वह जोश अब ठंढा हो चला है!

४

इसके कुछ दिन बाद हम इलाहाबाद चले गये। बाबू जी ने पहले से ही एक दो मंजिला मकान ले रखा था, जो सब तरह से सजा-सजाया था। हमारे यहाँ पाँच नौकर थे। दो स्त्रियाँ, दो पुरुष और एक महाराज। अब मैं घर के कुल काम-काज से छुट्टी पा गयी। कभी जी घबराता तो कोई उपन्यास लेकर पढ़ने लगती।

यहाँ फूल और पीतल के बर्तन बहुत कम थे। चीनी मिट्टी की रकाबियाँ और प्याले आलमारियों में सुसज्जित थे। भोजन मेज पर आता था। बाबू जी बड़े चाव से भोजन करते। मुझे पहले कुछ शरम आती थी, लेकिन धीरे-धीरे मैं भी मेज पर ही भोजन करने लगी। हमारे पास एक सुन्दर टमटम भी थी। अब हम पैदल बिलकुल न चलते। किसी से मिलने दस पग भी जाना होता तो गाड़ी तैयार करायी जाती। बाबू जी कहते, 'यही फैशन है।'

बाबू जी की आमदनी अभी बहुत कम थी। भली-भाँति खर्च भी न चलता। कभी-कभी मैं उनको चिन्ताकुल देखती तो समझाती कि जब आय इतनी कम है तो व्यय इतना क्यों बढ़ा रखा है। कोई छोटा-सा मकान ले लो, दो नौकरों से भी काम चल सकता है। लेकिन बाबू जी मेरी बातों पर

हँस देते और कहते, 'मैं अपनी दरिद्रता का ढिंढोरा अपने-आप क्यों पीटूं ? दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होने से अधिक दुःखदायी होता है। भूल जाओ कि हम लोग निर्धन है, फिर लक्ष्मी हमारे पास दौड़ी आयेंगी। खर्च बढ़ना, आवश्यकताओं का अधिक होना ही द्रव्योपार्जन की पहली सीढ़ी है। इससे हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं और हम उन कष्टों को झेलते हुए आगे पग धरने के योग्य होते हैं। सन्तोष दरिद्रता का दूसरा नाम है।'

अस्तु, हम लोगों का खर्च दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। हम लोग सप्ताह में तीन बार थिएटर जरूर देखते। सप्ताह में एक बार मित्रों को भोज अवश्य ही दिया जाता। अब मुझे सूझने लगा कि जीवन का लक्ष्य सुख-भोग ही है। ईश्वर को हमारी उपासना की चाह नहीं है, उसने हमको उत्तम-उत्तम वस्तुएँ भोगने के लिए ही दी हैं। यही उसकी सर्वोत्तम आराधना है। एक ईसाई लेडी मुझे पढ़ाने तथा गाना सिखाने आने लगी। घर में एक पियानो भी आ गया। इन्हीं आनन्दों में फँसकर मैं रामायण और भक्तमाल को भूल गयी। वे पुस्तकें मुझे अप्रिय होने लगीं। देवताओं पर से विश्वास भी उठ गया।

धीरे-धीरे यहाँ के बड़े लोगों से स्नेह और सम्बन्ध बढ़ने लगा। यह एक बिलकुल नयी सोसाइटी थी। इसका रहन-सहन, आचार-व्यवहार और विचार मेरे लिए सर्वथा अनोखे थे। मैं इस सोसाइटी में ऐसी जान पड़ती, जैसे मोरों में कौवा। इन लेडियों की बात-चीत थिएटर और घुड़दौड़ के विषय पर होती, कभी टेनिस, समाचार-पत्रों और अच्छे-अच्छे लेखकों के लेख पर। उनके चातुर्य, बुद्धि की तीव्रता, उनकी फुरती और चपलता पर मुझे अचम्भा होता कि वे ज्ञान और प्रकाश की पुतलियाँ ही हैं। वे बिना घूँघट बाहर निकलतीं। मैं उनके साहस पर चकित रह जाती। वे मुझे भी कभी-कभी अपने साथ ले जाने की चेष्टा करतीं, लेकिन मैं लज्जावश न जा सकती। मैं उन लेडियों को कभी उदास या चिन्तित न पाती। मिस्टर दास बहुत बीमार थे, परन्तु मिसेज

दास के माथे पर चिन्ता का चिह्न तक न था। मिस्टर वागड़ी नैनीताल में तपेदिक का इलाज करा रहे थे, पर मिसेज वागड़ी नित्य टेनिस खेलने जाती थीं। इस अवस्था में मेरी क्या दशा होती, यह मैं ही जानती हूँ।

इन लेडियों की रीति-नीति में एक आकर्षण शक्ति थी, जो मुझे खींचे लिए जाती थी। मैं उन्हें सदैव आमोद-प्रमोद के लिए उत्सुक देखती और मेरा जी चाहता कि उन्हीं की भाँति मैं भी निस्संकोच हो जाती। उनका अँग्रेजी वार्तालाप सुनकर मुझे मालूम होता कि वे देवियाँ हैं। मैं अपनी इन त्रुटियों की पूर्ति के लिए प्रयत्न किया करती थी।

इसी बीच में मुझे एक खेदजनक अनुभव होने लगा। यद्यपि बाबू जी पहले से मेरा अधिक आदर करते थे, मुझे सदैव 'डियर' 'डार्लिङ्ग' कहकर सम्बोधन करते थे, तथापि मुझे उनकी बातों में एक प्रकार की बनावट मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता, मानो ये बातें हृदय से नहीं, केवल मुख से निकलती हैं। उनके स्नेह और प्यार में हार्दिक भावों की जगह अलंकार ज्यादा होता था। किन्तु और भी अचम्भे की बात तो यह थी कि अब मुझे भी बाबू जी पर पहले की-सी श्रद्धा न रही थी। अब उनकी सिर-पीड़ा से मुझे हृदय-पीड़ा न होती थी। मुझमें आत्म-गौरव का आविर्भाव होने लगा था। अब मैं अपना बनाव-शृङ्गार इसलिए करती थी कि संसार में यह भी मेरा कर्त्तव्य है, इसलिए नहीं कि मैं किसी एक पुरुष की व्रतधारिणी हूँ। अब मुझे भी अपनी सुन्दरता पर गर्व होने लगा था। मैं अब किसी दूसरे के लिए न जीती थी, अपने लिए जीती थी, त्याग तथा सेवा का भाव मेरे हृदय से लुप्त होने लगा था।

मैं अब भी परदा करती थी, परन्तु हृदय अपनी सुन्दरता की सराहना सुनने के लिए व्याकुल रहता था। एक दिन मिस्टर दास तथा और सभ्यगण बाबू जी के साथ बैठे हुए थे। मेरे और उनके बीच में केवल एक परदे की आड़ थी। बाबू जी मेरी इस झिझक से बहुत ही लज्जित थे। इसे वह अपनी सभ्यता में काला धब्बा समझते थे। कदाचित् वह

दिखाना चाहते थे कि मेरी स्त्री इसलिए परदे में नहीं है कि वह रूप तथा वस्त्र-आभूषणों में किसी से कम है, बल्कि इसलिए है कि अभी उसे लज्जा आ जाती है। मुझे किसी बहाने से बारम्बार पर्दे के निकट बुलाते, जिसमें उनके मित्र मेरी सुन्दरता और वस्त्राभूषण देख लें। अन्त में कुछ दिन बाद ऐसा ही हुआ। इलाहाबाद आने के पूरे दो वर्ष बाद मैं बाबू जी के साथ बिना पर्दे के सैर करने लगी। सैर के बाद टेनिस की नौबत पहुँची। अन्त को मैंने क्लब में आकर दम लिया। पहले यह टेनिस और क्लब मुझे तमाशा-सा मालूम होता था, मानो वे लोग व्यायाम के लिए नहीं, बल्कि फैशन के लिए टेनिस खेलने आते थे। वह कभी न भूलते थे कि हम टेनिस खेल रहे हैं। उनके प्रत्येक काम में, झुकने में, दौड़ने में, उचकने में एक कृत्रिमता थी, जिससे यह प्रतीत होता था कि इस खेल का प्रयोजन कसरत नहीं, केवल दिखावा है।

क्लब में इससे भी विचित्र अवस्था थी। वह पूरा स्वाँग था, भद्दा और बेजोड़। लोग अँग्रेजो के चुने हुए शब्दों का प्रयोग करते थे, जिसमें कोई सार नहीं होता था, नकली हँसी हँसते थे, जिसका कि अवसर न होता था। स्त्रियों की यह फूहड़ निर्लज्जता और पुरुषों की यह भाव-शून्य नारी-श्रद्धा मुझे तनिक भी न भाती। चारों ओर अँग्रेजी चाल-ढाल की एक हास्यजनक नकल थी। परन्तु क्रमशः मैं भी वही रंग पकड़ने लगी और उन्हीं का अनुसरण करने लगी। अब मुझे अनुभव हुआ कि इस प्रदर्शन-लोलुपता में कितनी शक्ति है। मैं अब नित्य नये शृङ्गार करती, नित्य नया रूप भरती, केवल इसलिए कि क्लब में मैं सबकी दृष्टि का लक्ष्य बन जाऊँ। अब मुझे बाबू जी के सेवा-सत्कार से अधिक अपने बनाव-शृङ्गार की धुन रहती थी। यहाँ तक कि यह शौक एक नशा-सा बन गया। इतना ही नहीं, बल्कि लोगों से अपनी सौन्दर्य-प्रशंसा सुन कर मुझे एक अभिमान-मिश्रित आनन्द का अनुभव होने लगा। मेरी लज्जाशीलता की सीमाएँ विस्तृत हो गयीं। वह दृष्टिपात जो कभी मेरे शरीर के प्रत्येक रोयें को खड़ा कर देता, और वह हास्य-

कटाक्ष जो कभी मुझे विष खा लेने को प्रस्तुत कर देता, उनसे अब मुझे एक उन्माद-पूर्ण हर्ष होता था। परन्तु जब कभी मैं अपनी अवस्था पर आन्तरिक दृष्टि डालती तो मुझे बड़ी घबराहट होती। यह नाव किस घाट लगेगी ? कभी-कभी इरादा करती कि क्लब न जाऊँगी, परन्तु समय आते ही फिर तैयार हो जाती थी। मैं अपने वश में न थी। सद्कल्पनाएँ निर्बल हो गयी थीं।

५

दो वर्ष और बीत गये और बाबू जी के स्वभाव में एक परिवर्तन होने लगा। वह उदास और चिन्तित रहने लगे। मुझसे बहुत कम बोलते। ऐसा जान पड़ता कि इन्हें कठिन चिन्ता ने घेर रखा है या कोई बीमारी हो गयी है। मुँह बिलकुल सूखा रहता, तनिक-तनिक-सी बात पर नौकरों से झल्लाने लगते और बाहर बहुत कम जाते।

अभी एक ही मास पहले, वह काम छोड़ कर क्लब अवश्य जाते थे, वहाँ गये बिना उन्हें कल न पड़ती थी पर अब अधिकतर वह अपने कमरे में आरामकुर्सी पर लेटे हुए समाचार-पत्र और पुस्तकें देखा करते, मेरी समझ में न आता कि बात क्या है।

एक दिन उन्हें बड़े जोर का बुखार आया, दिन-भर बेहोश पड़े रहे। परन्तु मुझे उनके पास बैठने में अनकुस-सा लगता था। मेरा जी एक उपन्यास में लगा हुआ था, उनके पास जाती और पल-भर में फिर लौट आती। टेनिस का समय आया तो मैं द्विविधा में पड़ी कि जाऊँ या न जाऊँ। देर तक चित्त में यह संग्राम होता रहा। अन्त में मैंने निर्णय किया कि मेरे यहाँ रहने से यह कुछ अच्छे तो हो नहीं जायँगे, इससे मेरा यहाँ बैठा रहना बिलकुल निरर्थक है। बढ़िया वस्त्र पहने और रेकेट ले कर क्लब-घर जा पहुँची। वहाँ मैंने मिसेज दास और मिसेज वागड़ी से बाबू जी की दशा बतलायी और सजल नेत्र चुपचाप बैठी रही। जब सब लोग कोर्ट में जाने लगे और मिस्टर दास ने मुझसे चलने को कहा तो मैं एक ठंडी आह भर कर कोर्ट में जा पहुँची और खेलने लगी।

आज से तीन वर्ष पूर्व बाबू जी को इसी प्रकार बुखार आ गया था। मैं रात-भर उन्हें पंखा झलती रही। हृदय व्याकुल था और यही जी चाहता था कि इनके बदले मुझे बुखार आ जाय, परन्तु यह उठ बैठें। पर अब हृदय तो स्नेह शून्य हो गया था। दिखावा अधिक था। अकेले रोने की मुझमें क्षमता न रह गयी। मैं सदैव की भाँति रात को नौ बजे लौटी। बाबू जी का जी कुछ अच्छा जान पड़ा। उन्होंने केवल मुझे दबी दृष्टि से देखा और करवट बदल ली। परन्तु मैं लेटी तो मेरा ही हृदय मुझे अपनी स्वार्थपरता और प्रमोदासक्ति पर धिक्कारता रहा।

मैं अब अँगरेजी उपन्यासों को समझने लगी। हमारी बातचीत अधिक उत्कृष्ट और समालोचनात्मक होती थी।

हमारी सभ्यता का आदर्श अब बहुत उच्च हो गया था। हमको अब अपनी मित्र-मण्डली से बाहर दूसरों से मिलने-जुलने में संकोच होता था। अब हम अपने से लघु श्रेणी के लोगों से बोलने में अपमान समझते थे। नौकरों को अपना नौकर समझते थे और बस, हमको उनके निजी मुआमिलों से कुछ मतलब नहीं था। हम उनसे पृथक् रह कर अपना रोब उनके ऊपर जमाये रखना चाहते थे। हमारी इच्छा यह थी कि वह हम लोगों को साहब समझें। हिन्दुस्तानी स्त्रियों को देख कर हमें उनसे घृणा होती थी। उनमें शिष्टता न थी। खैर!

बाबू जी का जी दूसरे दिन भी न सँभला! मैं क्लब न गयी। परन्तु जब लगातार तीन दिन तक उन्हें बुखार आता गया और मिसेज दास ने बार-बार एक नर्स बुलाने का आग्रह किया तो मैं सहमत हो गयी। उस दिन से रोगी की सेवासुश्रूषा से छुट्टी पा कर बड़ा हर्ष हुआ। यद्यपि दो दिन से मैं क्लब न गयी थी, परन्तु मेरा जी वहीं रहता था, बल्कि अपने भीरुतापूर्ण त्याग पर क्रोध आता था।

एक दिन तीसरे पहर मैं कुर्सी पर लेटी हुई एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक मन में यह विचार उठा कि बाबू जी का बुखार असाध्य हो जाय तो? परन्तु इस विचार से मुझे लेश-मात्र भी दुःख न हुआ।

मैं इस शोकमय कल्पना का मन-ही-मन आनन्द उठाने लगी। मिसेज़ दास, मिसेज़ नायडू, मिसेज़ श्रीवास्तव, मिस खरे, मिसेज़ सरगा अवश्य ही मेरे दुःख में सम्मिलित होंगी। उन्हें देखते ही मैं सजल नेत्रों से उठूंगी और कहूँगी, बहनो ! मैं लुट गयी ! मैं लुट गयी !! अब मेरा जीवन अँधेरी रात के भयावह वन या श्मशान के दीपक के समान है। परन्तु मेरी अवस्था पर दुःख न प्रकट करो। मुझ पर जो पड़ेगी, उसे मैं उस महान् आत्मा के मोक्ष के विचार से सहन कर लूँगी।

मैंने इस प्रकार मन में एक शोकपूर्ण व्याख्यान की रचना कर डाली। यहाँ तक कि मैंने अपने उस वस्त्र के विषय में भी निश्चय कर लिया, जो मृतक के साथ श्मशान जाते समय पहनूँगी।

इस घटना की शहर-भर में चर्चा हो जायगी। सारे कंटूनमेंट के लोग मुझे समवेदना के पत्र भेजेंगे। तब मैं उनका उत्तर समाचारपत्रों में प्रकाशित करा दूँगी कि मैं प्रत्येक शोकपत्र का अलग उत्तर देने में असमर्थ हूँ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, उसे रोने के सिवा और किसी काम के लिए समय नहीं है। मैं इसके लिए उन लोगों की कृतज्ञ हूँ और उनसे विनयपूर्वक निवेदन करती हूँ कि वे मृतक की आत्मा की सद्गति के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना करें।

मैं इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी कि नर्स ने आकर कहा कि आपको साहब याद करते हैं। यह मेरे क्लब जाने का समय था। मुझे उनका बुलाना अखर गया, लेकिन क्या करती, किसी तरह उनके पास गयी। बाबू जी को बीमार हुए लगभग एक मास हो गया था, वह अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे। उन्होंने मेरी ओर विनयपूर्ण दृष्टि से देखा। उसमें आँसू भरे हुए थे। मुझे उन पर दया आयी। बैठ गयी, और ढाढ़स देते हुए बोली, क्या करूँ ? कोई दूसरा डाक्टर बुलाऊँ ?

बाबू जी आँखें नीची करके अत्यन्त करुण भाव से बोले, मैं यहाँ कभी अच्छा नहीं हो सकता, मुझे अम्माँ के पास पहुँचा दो।

मैंने कहा, क्या आप समझते हैं कि वहाँ आपकी चिकित्सा यहाँ से

अच्छी होगी।

बाबू जी बोले, क्या जाने क्यों मेरा जी अम्माँ के दर्शनों को लालायित हो रहा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वहाँ बिना दवा-दर्पन के भी अच्छा हो जाऊँगा।

मैं—यह आपका केवल विचार-मात्र है।

बाबू जी—शायद ऐसा ही हो; लेकिन मेरी विनय स्वीकार करो। मैं इस रोग से नहीं, इस जीवन से दुखित हूँ।

मैंने अचरज से उनकी ओर देखा।

बाबू जी फिर बोले—हाँ, मैं इस ज़िन्दगी से तंग आ गया हूँ। मैं अब समझ रहा हूँ कि मैं जिस स्वच्छ लहराते हुए निर्मल जल की ओर दौड़ा जा रहा था, वह मरुभूमि है। मैं इस प्रकार के जीवन के बाहरी रूप पर लट्टू हो रहा था; परन्तु अब मुझे उसकी आन्तरिक अवस्थाओं का बोध हो रहा है। इन चार वर्षों में मैंने इस उपवन में खूब भ्रमण किया और उसे आदि से अन्त तक कंटक-मय पाया। यहाँ न तो हृदय को शान्ति है और न आत्मिक आनन्द। यह एक उन्मत्त अशान्तिमय स्वार्थपूर्ण विलासयुक्त जीवन है। यहाँ न नीति है न धर्म, न सहानुभूति और न सहृदयता। परमात्मा के लिए मुझे इस अग्नि से बचाओ। यदि और कोई उपाय न हो, तो अम्माँ को एक पत्र ही लिख दो। वह अवश्य यहाँ आयेंगी। अपने अभागे पुत्र का दुःख उनसे न देखा जायगा, उन्हें इस सोसाइटी की हवा अभी नहीं लगी है, वह आयेंगी। उनकी वह ममतापूर्ण दृष्टि, वह स्नेहपूर्ण सुश्रूषा मेरे लिए सौ औषधियों का काम करेगी। उनके मुख पर वह ज्योति प्रकाशमान होगी, जिसके लिए मेरे नेत्र तरस रहे हैं। उनके हृदय में स्नेह है, सत्य है, विश्वास है। यदि उनकी गोद में मैं मर जाऊँ तो मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी।

मैं समझा कि यह बुखार की बकझक है। नर्स से कहा, जरा इनका टेम्परेचर तो लो, मैं अभी डाक्टर के पास जाती हूँ। मेरा हृदय एक अज्ञात भय से काँपने लगा। नर्स ने थरमामीटर निकाला, परन्तु ज्यों-

ही वह बाबू जी के पास गयी, उन्होंने उसके हाथ से वह यन्त्र छीन कर पृथ्वी पर पटक दिया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये और मेरी ओर एक अवहेलनापूर्ण दृष्टि से देख कर कहा, साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो कि मैं क्लब-घर जाती हूँ, जिसके लिए तुमने यह वस्त्र धारण किये हैं और गाउन पहनी है। खैर, उधर से घूमती हुई यदि डाक्टर के पास जाओ, तो उनसे कह देना कि यहाँ टेम्परेचर उस बिन्दु पर आ पहुँचा है, जहाँ आग लग जाती है।

मैं और भी भयभीत हो गयी और हृदय में एक करुण चिन्ता का संचार होने लगा। गला भर आया। बाबू जी ने नेत्र मूँद लिये थे और उनकी साँस वेग से चल रही थी। मैं द्वार की ओर चली कि किसी को डाक्टर के पास भेजूँ। यह फटकार सुन कर स्वयं कैसे जाती। इतने में बाबू जी उठ बैठे और विनीत भाव से बोले, श्यामा! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। बात दो सप्ताह से मन में थी, पर साहस न हुआ। आज मैंने निश्चय कर लिया है कि कह ही डालूँ। मैं अब फिर अपने घर जा कर वही पहले की-सी जिन्दगी बिताना चाहता हूँ। मुझे अब इस जीवन से घृणा हो गयी है और यही मेरी बीमारी का मुख्य कारण है। मुझे शारीरिक नहीं, वरन् मानसिक कष्ट है। मैं फिर तुम्हें वही पहले-सी सलज्जा, नीचा सर करके चलनेवाली, पूजा करनेवाली, रामायण पढ़नेवाली, घर का काम-काज करनेवाली, चरखा कातनेवाली, ईश्वर से डरनेवाली, पति-श्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूँ। मैं विश्वास करता हूँ कि तुम मुझे निराश न करोगी। मैं तुमको सोलहो आना अपना बनाना चाहता हूँ और सोलहो आना तुम्हारा बनना चाहता हूँ। मैं अब समझ गया कि उसी सादे पवित्र जीवन में वास्तविक सुख है। बोलो, स्वीकार है? तुमने सदैव मेरी आज्ञाओं का पालन किया है, इस समय निराश न करना, नहीं तो इस कष्ट और शोक का न जाने कितना भयंकर परिणाम हो!

मैं सहसा कोई उत्तर न दे सकी। मन में सोचने लगी, इस स्वतन्त्र

जीवन में कितना सुख था। यह मजे वहाँ कहाँ ? क्या इतने दिन स्वतन्त्र पवन में विचरण करने के पश्चात् फिर उसी पिंजरे में जाऊँ ? वही लौंडी बन कर रहूँ ? क्यों इन्होंने मुझे वर्षों स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया; वर्षों देवताओं की, रामायण की, पूजा-पाठ की, व्रत-उपवास की बुराई की, हँसी उड़ायी और अब जब मैं उन बातों को भूल गयी, उन्हें मिथ्या समझने लगी, तो फिर मुझे उसी अन्धकूप में ढकेलना चाहते हैं ! मैं उन्हीं की इच्छानुसार चलती हूँ, फिर मेरा अपराध क्या है ? लेकिन बाबू जी के मुख पर एक ऐसी दीनतापूर्ण विवशता थी कि मैं प्रत्यक्ष अस्वीकार न कर सकी। बोली, आखिर आपको यहाँ क्या कष्ट है ?

मैं उनके विचारों की तह तक पहुँचना चाहती थी। बाबू जी उठ बैठे और मेरी ओर कातर दृष्टि से देख कर बोले, बहुत ही अच्छा होता कि तुम इस प्रश्न को मुझसे पूछने के बदले अपने ही हृदय से पूछ लेतीं। क्या अब मैं तुम्हारे लिए वही हूँ जो आज से तीन वर्ष पहले था ? जब मैं तुमसे अधिक शिक्षा प्राप्त, अधिक बुद्धिमान, अधिक जानकार हो कर तुम्हारे लिए वह नहीं रहा जो पहले था, तुमने चाहे इसे अनुभव न किया हो, परन्तु मैं स्वयं कर रहा हूँ, तो मैं कैसे अनुमान करूँ कि उन्हीं भावों ने तुम्हें स्खलित न किया होगा ? नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष चिह्न देखता हूँ कि तुम्हारे हृदय पर उन भावों का और भी अधिक प्रभाव पड़ा है। तुमने अपने को ऊपरी बनाव-चुनाव और विलास के भँवर में डाल दिया है, और तुम्हें उसकी लेश-मात्र भी सुध नहीं है। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि सभ्यता, स्वेच्छाचारिता का भूत स्त्रियों के कोमल हृदय पर बड़ी सुगमता से कब्जा कर सकता है। क्या अब से तीस वर्ष पूर्व भी तुम्हें यह साहस हो सकता था कि मुझे इस दशा में छोड़ कर तुम किसी पड़ोसिन के यहाँ गाने-बजाने चली जातीं ! मैं बिछौने पर पड़ा रहता और तुम किसी के घर जाकर किलोलें करतीं ? स्त्रियों का हृदय आधिक्य-प्रिय होता है। परन्तु इस नवीन आधिक्य के बदले मुझे वह पुराना

आधिक्य कहीं ज्यादा पसन्द है। उस आधिक्य का फल आत्मिक और शारीरिक अभ्युदय और हृदय की पवित्रता थी; इस आधिक्य का परिणाम है छिछोरापन, निर्लज्जता, दिखावा और स्वेच्छाचार। उस समय यदि तुम इसी प्रकार मिस्टर दास के सम्मुख हँसतीं या बोलतीं तो मैं या तो तुम्हें मार डालता या स्वयं विषपान कर लेता। परन्तु बेहयाई इस जीवन का प्रधान तत्व है। मैं सब कुछ स्वयं देखता हूँ और सहता हूँ और कदाचित् सहे जाता, यदि इस बीमारी ने मुझे सचेत न कर दिया होता। अब यदि तुम यहाँ बैठी भी रहो तो मुझे सन्तोष न होगा, क्योंकि मुझे यह विचार दुखित करता रहेगा कि तुम्हारा हृदय यहाँ नहीं है। मैंने अपने को इस इन्द्रजाल से निकालने का निश्चय कर लिया है, जहाँ धन का नाम मान है, इन्द्रिय-लिप्सा का सभ्यता और भ्रष्टता का विचार-स्वातन्त्र्य। बोलो, मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ?

मेरे हृदय पर वज्रपात-सा हो गया। बाबू जी का अभिप्राय पूर्णतया हृदयंगम हो गया। अभी हृदय में कुछ पुरानी लज्जा बाकी थी। यह यन्त्रणा असह्य हो गयी। लज्जा पुनर्जीवित हो उठी। अन्तरात्मा ने कहा, अवश्य ! मैं अब वह नहीं हूँ, जो पहले थी। उस समय मैं इनको अपना इष्टदेव मानती थी, इनकी आज्ञा शिरोधार्य थी। अब वह मेरी दृष्टि में एक साधारण मनुष्य हैं। मिस्टर दास का चित्र मेरे नेत्रों के सामने खिंच गया। कल मेरे हृदय पर उस दुरात्मा की बातों का कैसा नशा छा गया था, यह सोचते ही नेत्र लज्जा से झुक गये। बाबू जी की आन्तरिक अवस्था उनके मुखड़े से ही प्रकाशमान हो रही थी। स्वार्थ और विलास-लिप्सा के विचार मेरे हृदय से दूर हो गये। उसके बदले ये शब्द ज्वलन्त अक्षरों में लिखे हुए नजर आये—तूने फैशन और वस्त्राभूषणों में अवश्य उन्नति की है, तुझमें अपने स्वत्वों का ज्ञान हो गया है, तुझमें जीवन के सुख भोगने की योग्यता अधिक हो गयी है, तू अब अधिक गर्विणी, दृढ़ हृदय और शिक्षा-सम्पन्न हो गयी है, लेकिन तेरे आत्मिक बल का विनाश हो गया है। क्योंकि तू अपने कर्त्तव्य को भूल

गयी है।

मैं दोनों हाथ जोड़ कर बाबू जी के चरणों पर गिर पड़ी। कण्ठ रुँध गया, एक शब्द भी मुँह से न निकला, अश्रुधारा बह चली!

अब मैं पुनः अपने घर पर आ गयी हूँ। अम्माँ जी अब मेरा अधिक सम्मान करती हैं। बाबू जी अब सन्तुष्ट दीख पड़ते हैं। वह अब प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन करते हैं।

मिसेज़ दास के पत्र कभी-कभी आते हैं। वह इलाहाबादी सोसाइटी के नवीन समाचारों से भरे होते हैं। मिस्टर दास और मिस भाटिया के सम्बन्ध में कलुषित बातें उड़ रही हैं। मैं इन पत्रों का उत्तर तो देती हूँ, परन्तु चाहती हूँ कि वह अब न आते तो अच्छा होता।

कल बाबू जी ने बहुत-सी पुरानी पोथियाँ अग्निदेव को अर्पण कीं। उनमें आसकर वाइल्ड की कई पुस्तकें थीं। वह अब अँग्रेजी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। उन्हें कार्लाइल, रस्किन और एमर्सन के सिवा और कोई पुस्तक पढ़ते मैं नहीं देखती। मुझे तो अपनी रामायण और महाभारत में फिर वही आनन्द प्राप्त होने लगा है। चरखा अब पहले से अधिक चलाती हूँ, क्योंकि इस बीच में चरखे ने खूब प्रचार पा लिया है।

लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा

विद्या पर जाति-विशेष या कुल का एकाधिपत्य नहीं होता। बाबू हरिविलास जाति के कुरमी थे। घर खेती-बारी होती थी, पर उन्हें बचपन ही से विद्याभ्यास का व्यसन था। यह विद्या-प्रेम देख कर उनके पिता रामविलास महतो ने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया। उन्हें हल में न जोता। आप मोटा खाते थे, मोटा पहनते थे और मोटा काम करते थे, लेकिन हरिविलास को कोई कष्ट न देते थे। वह पुत्र को रामायण पढ़ते देख कर खुशी से फूले न समाते थे। जब गाँव के लोग उनके पास अपने सम्मन या चिट्ठियाँ पढ़वाने आते तो गर्व से महतो का सिर ऊँचा हो जाता

था। बेटे के पास होने की खुशी और फेल होने का रंज उन्हें बेटे से भी अधिक होता था और उसके इनामों को देख कर तो वह मानों स्वर्ग में पहुँच जाते थे। हरिविलास का उत्साह इन प्रेरणाओं से और भी बढ़ता था, यहाँ तक कि शनैः शनैः मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में पास हो गये। रामविलास ने समझा था अब फ़स्ल काटने के दिन आये। लेकिन जब मालूम हुआ कि यह विद्या का अन्त नहीं, बल्कि वास्तव में आरम्भ है तो उनका जोश ठंडा पड़ गया। किन्तु हरिविलास का अनुराग अब कठिनाइयों को ध्यान में न लाता था। उस दृढ़ संकल्प के साथ जो बहुधा दरिद्र, पर चतुर युवकों में पाया जाता है, वह कालेज में दाखिल हो गया। रामविलास हार कर चुप हो गये। वे दिनोंदिन अशक्त होते जाते थे और खेती परिश्रम का दूसरा नाम है। कभी समय पर सिंचाई न कर सकते, कभी समय पर जुताई न हो सकती। उपज कम हो जाती थी, पर इस दुरवस्था में भी वह हरिविलास की पढ़ाई के खर्च का प्रबन्ध करते रहते थे। धीरे-धीरे उनकी सारी जमीन रेहन हो गयी। यहाँ तक कि जब हरिविलास एम०ए० पास हुए तो एक अंगुल भूमि भी न बची थी। सौभाग्य से उनका नम्बर विद्यालय में सबसे ऊँचा था। अतएव उन्हें डिप्टी मैजिस्ट्रेट का पद मिल गया। रामविलास ने यह समाचार सुना तो पागलों की भाँति दौड़ा हुआ ठाकुरद्वारे में गया और ठाकुर जी के पैरों पर गिर पड़ा। उसे स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी।

२

बाबू हरिविलास विद्वान् ही न थे, सच्चरित्र भी थे। बड़े निर्भीक, स्पष्टवादी, दयालु और गम्भीर। न्याय पर उनकी अटल भक्ति थी। न्याय-पथ से पग-भर भी न टलते थे। प्रजा उनसे दबती थी, पर उन्हें प्यार करती थी। अधिकारी लोग उनका सम्मान करते थे, पर मन में उनसे शंकित रहते थे।

उन्होंने नीति-शास्त्र का खूब अध्ययन किया था। उन्हें इस शास्त्र से बहुत प्रेम था। वे कानून को ही अपना अफसर समझते थे। वे अफ-

सरों को खुश रखना चाहते थे, लेकिन जब उनका हुक्म कानून के विरुद्ध होता तो वे उसे न मानते थे।

उन्हें नौकरी करते पाँच साल हो चुके थे। अलीगढ़ में तैनात थे। ठाकुर दलजीतसिंह के घर डाका पड़ा। पुलिस को असामियों पर सन्देह हुआ। कई गाँव के असामी पकड़े गये, गवाहियाँ बनायी गयीं और असामियों पर मुकदमा चलने लगा। बेचारे किसान निपराध थे। चारों ओर कुहराम मच गया। कितने ही किसान जिलाधीश के पास जा कर रोये। जिलाधीश ठाकुर साहब के मित्र थे, साल में दो-चार दावतें खाते, उनके हलके में शिकार खेलते, उनकी मोटर और फिटन पर सवार होते थे। असामियों की गुस्ताखी पर बिगड़ गये। उन्हें डाँट-डपट कर दुत्कार दिया। ज्वाला और भी दहकी। साहब ने बाबू हरिविलास को बंगले पर बुला कर ताकीद की कि मुलजिमों को सजा अवश्य करना, नहीं जेल में बलवा हो जायगा; किन्तु हरिविलास को जब मालूम हुआ कि गवाह बनाये हुए हैं और ज्यादती ठाकुर साहब की है तो इन्होंने मुल्जिमों को बरी कर दिया। हाकिम जिला ने यह फैसला सुना जामे बाहर हो गये। हरिविलास की रिपोर्ट की, बदली हो गयी।

दूसरी बार फिर नीच जातिवालों के साथ न्याय करने का उन्हें ऐसा ही फल मिला। लखनऊ में थे, वहाँ देहाती मदरसों में नीच जातियों के लड़के दाखिल न होने पाते थे। कुछ तो अध्यापकों का विरोध था, उनसे ज्यादा गाँव के लोगों का। हरिविलास दौरे पर गये और यह शिकायत सुनी तो कई अध्यापकों की तम्बीह की, कई आदमियों पर जुर्माना किया। जमींदारों ने यह देखा तो उनसे द्वेष करने लगे। गुमनाम चिट्ठियाँ, झूठी शिकायतों से भरी हुई हाकिमों के पास पहुँचने लगीं। तहसीलदारों ने जमींदारों को और भी उकसाया। एक कुरमी का इतने ऊँचे पद पर पहुँचना सभी को खटकता था। नतीजा यह हुआ कि लोगों ने अपने लड़के मदरसे से उठा लिये, कई मदरसे बन्द हो गये। हरिविलास की खासी बदनामी हो गयी। हाकिम जिला

ने उन्हें वहाँ रखना उचित न समझा। उनकी बदली कर दी। एक दरजा भी घट गया।

इन अन्यायों के होते हुए भी बाबू हरिविलास का-सा कर्त्तव्यशील अफसर सारे प्रान्त में न था। उन्हें विश्वास था कि मेरे स्थानीय अफसर कितने ही पक्षपाती हों, उनकी नीति कितनी ही संकुचित हो, पर देश का शासन सत्य और न्याय पर ही स्थित है। अँग्रेजी राज्य की वह सदैव स्तुति किया करते थे। यह इसी शासन-काल की उदारता थी कि उन्हें ऐसा ऊँचा पद मिला था, नहीं तो उनके लिए यह अवसर कहाँ थे? दीनों और असहायों की इतनी रक्षा किसने की? शिक्षा की उन्नति कब हुई? व्यापार का इतना प्रसार कब हुआ? राष्ट्रीय भावों की ऐसी जागृति कहाँ थी? वह जानते थे कि इस राज्य में भी कुछ-न-कुछ बुराइयाँ अवश्य हैं। मानवीय संस्थाएँ कभी दोष-रहित नहीं हो सकतीं लेकिन बुराइयों से भलाइयों का पल्ला कहीं भारी है। यही विचार थे, जिनसे प्रेरित होकर यूरोपीय महासमर में हरिविलास ने सरकारी खैर-ख्वाही में कोई बात उठा नहीं रखी, हजारों रंगरूट भरती कराये, लाखों रुपये कर्ज दिलवाये और महीनों घूम-घूम कर लोगों को उत्तेजित करते रहे। इसके उपलक्ष्य में उन्हें राय बहादुर की पदवी मिल गयी।

३

जाड़े के दिन थे। डिप्टी हरिविलास बाल-बच्चों के साथ दौरे पर थे। बड़े दिन की तातील हो गयी थी, इसलिए तीनों लड़के भी आये हुए थे। बड़ा शिवविलास लाहौर के मेडिकल कालेज में पढ़ता था। मँझला संतविलास इलाहाबाद में कानून पढ़ता था और छोटा श्रीविलास लखनऊ के ही एक स्कूल का विद्यार्थी था। शाम हो रही थी, डिप्टी साहब अपने तम्बू के सामने एक पेड़ के नीचे कुरसी पर बैठे हुए थे। इलाके के कई जमींदार भी मौजूद थे।

एक मुसलमान महाशय ने कहा, हुजूर, आजकल ताल में चिड़ियाँ खूब हैं। शिकार खेलने का अच्छा मौका है।

दूसरे महाशय बोले, हुजूर जिस दिन चलने को कहें, बेगार ठीक कर लिए जायँ। दो-तीन डोंगियाँ भी जमा कर ली जायँ।

शिवविलास—क्या अभी तक आप लोग बेगार लेते ही जाते हैं?

'जी हाँ, इसके बगैर काम कैसे चलेगा? मगर हाँ, अब मार-पीट बहुत करनी पड़ती है।'

एक ठाकुर साहब बोले, जब से गाँव के मनई बसरा में मजूर होके गये तब से कोऊ का मिजाजै नहीं मिलत। बात तक तो सुनत नहीं है। ई लड़ाई हमका मटियामेट कै दिहेस।

शिवविलास—आप लोग मजूरी भी तो बहुत कम देते हैं।

ठाकुर—हुजूर, पहले दिन-भर दुइ पैसा देत रहेन, अब जो चार देइत हैं, तौनों पर कोऊ बिना मार-गारी खाये बात नहीं सुनत है।

शिवविलास—खूब! चार पैसे तो आप मजदूरी देते हैं और चाहते हैं कि आदमियों को गुलाम बना लें। शहर में कोई मजदूर आठ आने से कम में नहीं मिल सकता।

मुसलमान महाशय ने कहा, हुजूर वजा फरमाते हैं। चार पैसे में तो एक वक्त की रोटियाँ भी नहीं चल सकतीं। मगर यहाँ की रिआया सख्ती की ऐसी आदी हो गयी है कि हम चाहे आठ आने ही क्यों न दें, पर बिला सख्ती किये मुखातिब ही नहीं होती। हाँ यह तो बतलाइए हुजूर, यह आजकल क्या हवा फिर गयी है कि जहाँ देखिए वहीं मदरसे बन्द होते जाते हैं। सुनता हूँ बड़े-बड़े कालेज भी टूट रहे हैं। इससे तालीम का बड़ा नुकसान होगा।

बाबू हरिबिलास को मालूम था कि शिवविलास इसका क्या जवाब देगा। उसके राजनैतिक विचारों से परिचित थे। दोनों आदमियों में प्रायः इस विषय पर वाद-विवाद होता रहता था। लेकिन वे न चाहते थे कि इन जमींदारों के सामने वे अपने स्वाधीन विचार प्रकट करें। शिवविलास को बोलने का अवसर न दे कर आप ही बोले, मैं तो इसे पागलपन समझता हूँ, निरा पागलपन। यह लोग समझते हैं कि इन

कार्रवाइयों से वे हमारी सरकार को परास्त कर देंगे। कुछ लोग देहातों में पंचायतें भी बनाते फिरते हैं। इसका मतलब भी यही है कि सरकारी अदालतों की जड़ खोदी जाय; लेकिन कोई इन भलेमानुसों से पूछे कि क्या कानूनी गुत्थियाँ इन देहातियों के सुलझाये सुलझ जायँगी। जिस कानून के पढ़ने और समझने में उमरें गुजर जाती हैं उसका व्यवहार यह हल जुत्ते क्या खा कर करेंगे। शासन की बुनियादी परम्परा सत्य और न्याय पर स्थित रही है और जब तक शासक लोग इस मूल तत्त्व को भूल न जायँ, राज्य की अवनति नहीं हो सकती। हमारी सरकार ने सदैव इस आदर्श को अपने सामने रक्खा है। प्रत्येक जाति को, प्रत्येक व्यक्ति को उस रेखा तक कर्म और वचन की पूर्ण स्वाधीनता दे दी है कि जहाँ तक उससे दूसरों को कोई हानि न हो। यही न्यायप्रियता हमारी सरकार को अमर बनाये हुए है। जोर दिया जा रहा है कि लोग सरकारी नौकरियाँ छोड़ दें। इस उद्देश्य का पूरा होना और भी कठिन है। मैं यह मानता हूँ कि कर्मचारी लोग बड़ी संख्या में इस नीति पर चलें तो सरकार के काम में बाधा पड़ सकती है लेकिन ऐसा होना असम्भव-सा जान पडता है। कर्मचारियों में अच्छे और बुरे दोनों ही हैं। जो बुरे हैं वे नौकरी कभी न छोड़ेंगे, इसलिए कि बेईमानी और रिश्वत के ऐसे अवसर कहीं नहीं मिल सकते; जो अच्छे हैं उनके लिए भी यहाँ जाति-सेवा और उपकार का बड़ा विस्तृत क्षेत्र है। उन्हें किसी पर अन्याय करने के लिए मजबूर नहीं किया जाता। सरकार किसी गुप्त और प्रजाघातक नीति का व्यवहार नहीं करती। ऐसी दशा में वे लोग पृथक् नहीं हो सकते। नौकरी को गुलामी कह,कर उसकी निन्दा की जाती है। लेकिन मैं उस वक्त तक इसे गुलामी नहीं समझ सकता, जब तक हमें अपने धर्म और आत्मा के विरुद्ध चलने पर विवश न किया जाय। जमींदारों ने ये बातें बड़े ध्यान से सुनीं। ऐसा जान पड़ता था कि इस विषय में सब-के-सब बाबू हरिबिलास से सहमत हैं। हाँ शिवबिलास इन युक्तियों का प्रतिवाद करने के लिए अधीर हो रहे थे, पर इतने

आदमियों के सामने मुँह खोलने का साहस न होता था।

इतने में बेगार ने चिट्ठियों का थैला ला कर डिप्टी साहब के आगे रख दिया। यद्यपि शहर यहाँ से १५ मील के लगभग था, पर एक बेगार प्रतिदिन डाक लाने के लिए भेजा जाता था। डिप्टी साहब ने उत्सुकता के साथ थैला खोला तो उसमें से लाल फीते से बँधा हुआ एक सरकारी 'कम्युनिक' (प्रकाश पत्र) निकल पड़ा। उसे गौर से पढ़ने लगे।

४

आधी रात जा चुकी थी। किन्तु हरिविलास अभी तक करवट बदल रहे थे। मेज पर लैम्प जल रहा था। वे उसी लाल फीते से बँधे हुए पत्र को बारबार देखते और विचारों में डूब जाते थे। वह लाल फीता उन्हें न्याय और सत्य के खून में रँगा हुआ जान पड़ता था। किसी घातक की रक्तमय आँखें थीं जो उनकी ओर घूर रही थीं या एक ज्वाला-शिखा जो उनकी आत्मा और सत्य-ज्ञान को निगल जाने के लिए उनकी ओर लपकी चली आती थी। वे सोच रहे थे, अब तक मैं समझता था कि मेरा कर्तव्य न्याय पर चलना है। अब मालूम हुआ कि यह मेरी भूल थी। मेरा कर्तव्य न्याय का गला घोंटना है, नहीं तो मुझे ऐसे आदेश क्यों मिलते? क्या समाचार-पत्रों का पढ़ना भी कोई अपराध है? क्या दीन किसानों की रक्षा करना भी कोई पाप है? मैं ऐसा नहीं समझता। मुझे उन साधु संन्यासियों पर कड़ी दृष्टि रखने का हुक्म दिया गया है जो धर्मोपदेश करते हुए दिखाई दें। यही नहीं, मुझे यह भी देखना चाहिए कि कौन गजी-गाढ़े के कपड़े पहने हुए है, किसके सिर पर कैसी टोपी है, उस टोपी पर कैसी छाप लगी हुई है। चरखा चलानेवालों पर भी नजर रखनी चाहिए। मुझे उन लोगों के नाम भी अपने रोजनामचे में दर्ज करने चाहिए जो राष्ट्रीय पाठशालाएँ खोलें, जो देहातों में पंचायतें बनायें, जो जनता को नशे की चीजें त्याग करने का उपदेश करें। इस आज्ञा के अनुसार वे भी राजविद्रोही हैं जो लोगों में स्वास्थ्य के नियमों का प्रचार करें, ताउन और हैजे के प्रकोप से

जनता की रक्षा करें, उन्हें मुफ्त दवाएँ दें, सारांश यह कि मुझे जाति के सेवकों का, हितैषियों का शत्रु बनना चाहिए। इसलिए कि मैं शासन का एक अंग हूँ।

उन्होंने एक बार फिर लाल फीते की ओर देखा। हाँ तो इस दशा में मेरा कर्तव्य क्या है? अपनी जाति का साथ दूँ या विजातीय सरकार का? इस समस्या का कारण यही है कि हमारे शासक विजातीय हैं और उनका स्वार्थ प्रजा के हित से भिन्न है। वे अपनी जाति के स्वार्थ के लिए, गौरव के लिए, व्यापारिक उन्नति के लिए यहाँ के लोगों को अनन्त काल तक इसी दशा में रखना चाहते हैं। इसीलिए प्रजा के राष्ट्रीय भावों को जागते देख कर वे उनको दबाने पर तुल जाते हैं। उन्हें वे सरल व्यवस्थायें आपत्तिजनक जँचने लगती हैं जिन्हें प्रजा अपने आत्म-सुधार के लिए करती है। नहीं तो क्या मद-त्याग के उपदेश भी सरकार की आँखों में खटकते। शासन का मुख्य धर्म है प्रजा की रक्षा, न्याय और शान्ति का विधान। अब तक मैं समझता था कि सरकार इस कर्तव्य को सर्वोपरि समझती है, इसलिए मैं उसका भक्त था। जब सरकार अपने धर्म-पथ से हट जाती है तो मेरा धर्म भी यही है कि उसका साथ छोड़ दूँ। अपने स्वार्थ के लिए देश का द्रोही नहीं बन सकता। सरकार से मेरा थोड़े दिनों का नाता है, देश से जन्म-भर का। क्या इस अस्थायी अधिकार के गर्व में अपने स्थायी सम्बन्ध को भूल जाऊँ। इस अधिकार के लिए क्या अब मुझे देश का शत्रु बनना पड़ेगा? क्या देश को अपने स्वार्थ पर न्यौछावर कर दूँ? एक तो वे हैं जो देश-सेवा पर आत्म-समर्पण कर देते हैं, उसके लिए नाना प्रकार के कष्ट झेलते हैं। एक मैं अभागा हूँ, जिसका काम यह है कि उन देश-सेवकों की जान का गाहक बनूँ। लेकिन यह सम्बन्ध तोड़ दूँ तो निर्वाह कैसे हो? जिन बच्चों को अब तक सभी सुख प्राप्त थे उन्हें अब दरिद्रता का शिकार बनना पड़ेगा। जिस परिवार का पालन-पोषण अब तक अमीरों के ढंग पर होता था उसे अब रो-रोकर दिन काटने पड़ेंगे। घर की जायदाद मेरी शिक्षा

की भेंट हो चुकी, नहीं तो कुछ खेती-बारी ही करके गुजर करता। वही तो मेरा मौरूसी पेशा था। कैसा सन्तोषमय जीवन था, अपने पसीने की कमाई खाते थे और सुख की नींद सोते थे। इस शिक्षा ने मुझे चौपट कर दिया, विलास का दास बना दिया, अनावश्यकताओं की बेडी पैरों में डाल दी। अब तो उस पुराने जीवन की कल्पना मात्र से प्राण सूख जाता है।

हा! हृदय में कैसी-कैसी अभिलाषाएँ थीं, कैसे-कैसे मनमोदक खाता था। शिवविलास विलायत जा कर डाक्टरी पढ़ने का स्वप्न देख रहा है। सन्तविलास को वकालत की धुन सवार है, छोटा श्रीविलास अभी से सिविल सरविस की तैयारी कर रहा है। अब इन सबों के मन्सूबे कैसे पूरे होंगे। लड़कों को तो खैर छोड़ भी दूँ तो वे किसी-न-किसी तरह गुजर कर ही लेंगे, लड़कियों का क्या करूँ। सोचा था, इनका विवाह उच्चकुल में करूँगा, जाति का भेद मिटा दूँगा। यह मनोकामना भी पूरी होती नहीं दीखती। कहीं दूसरी जगह नौकरी की तलाश करूँ तो इतना वेतन कहाँ मिल सकता है? रईसों के दरबार में पहुँचना कठिन है। सरकार की अवज्ञा करनेवाले को धरती-आकाश कहीं भी ठिकाना नहीं। परमात्मन्, तुम्हीं सुझाओ क्या करूँ?

इन्हीं चिन्ताओं में पड़े-पड़े उन्हें नींद आ गयी।

एक सप्ताह बीत गया, पर बाबू हरिविलास अभी तक दुविधा में ही पड़े थे। वह प्रायः उदास और खिन्न रहते थे। इजलास पर बहुत कम आते और आते भी तो मुकद्दमों की तारीख मुल्तवी करके फिर चले जाते। लड़के और लड़कियों से भी बहुत कम बातचीत करते, बात-बात पर झुँझला पड़ते, कुछ चिड़चिड़े हो गये थे। उन्होंने स्त्री से इस समस्या की चर्चा की, पर वह इस्तीफा देने पर उनसे सहमत न हुई। उसमें न्याय का वह ज्ञान न था जो हरिविलास के हृदय को व्यथित कर रहा था। लड़कों से इस विषय में कुछ कहने का उन्हें साहस न होता था। डरते थे कि वे निराश, निरुत्साह हो जायँगे। आनन्दमय जीवन की कैसी-

कैसी कल्पनाएँ कर रहे होंगे, वह सब नष्ट हो जायंगी। इस विषय में तो अब उन्हें कोई सन्देह न था कि सरकार ने सत्पथ को त्याग दिया और उसकी नौकरी से मेरा उद्धार नहीं हो सकता। ऐसा हुनर, कोई ऐसा उद्यम न जानते थे जिस पर उन्हें भरोसा होता। यहाँ तक कि साधारण क्रय-विक्रय भी उनके लिए कष्टसाध्य था। वे अपने को इस नौकरी के सिवा और किसी काम के योग्य न पाते थे। और न अब इतनी सामर्थ्य ही थी कि कोई नया उद्यम सीख सकें। स्वार्थ और कर्त्तव्य की उलझन में उनकी अत्यन्त करुण दशा हो रही थी।

६

आठवें दिन उन्हें यह खबर मिली कि इस इलाके में मादक वस्तुओं का निषेध करने के लिए किसानों की एक पंचायत होनेवाली है, उपदेश होंगे, भजन गाये जायेंगे और लोगों से मद-त्याग की प्रतिज्ञा ली जायगी। हरिविलास मानते थे कि नशे के व्यसन से देश का सर्वनाश हुआ जाता है, यहाँ तक कि नीची श्रेणी के मनुष्यों को तो इसने अपना गुलाम ही बना लिया है, अतएव इसका बहिष्कार सर्वथा स्तुत्य है। पहले एक बार मादक-वस्तु-विभाग में रह चुके थे और उनके समय में इस विभाग की आमदनी खूब बढ़ गयी थी। उस वक्त इस प्रश्न को वे अधिकारियों की आँखों से देखते थे। टेम्परेन्स के उपदेशकों को सरकार का विरोधी समझते थे। लेकिन इस लाल फीतेवाले आज्ञापत्र ने उनकी काया ही पलट दी थी। सरकारी प्रजा-हित-नीति पर उन्हें लेशमात्र भी विश्वास न रहा था। इस आज्ञा के अनुसार उनका कर्त्तव्य था कि जाकर इस पंचायत की कार्रवाइयों को देखें और यदि इस त्याग के लिए किसी के साथ सख्ती या तिरस्कार करते पायें तो तुरन्त उसे बन्द कर दें। मनुष्योचित और पदोचित कर्त्तव्यों में घोर संग्राम हो रहा था। इसी बीच में हल्के का दारोगा कई सशस्त्र कान्सटेबलों और चौकीदारों के साथ आ पहुँचा और सलाम करने को हाजिर हुआ। हरिविलास उसकी सूरत देखते ही लाल हो गये, जैसे फूस में आग लग जाय। कठोर स्वर से

बोले, आप यहाँ कैसे आये ?

दारोगा—हुजूर को इस पंचायत की इत्तिला तो मिली ही होगी। वहाँ फिसाद होने का खौफ है। इसलिए हुजूर की खिदमत में हाजिर हुआ हूँ।

हरिविलास—मुझे इसका कोई भय नहीं है। हाँ, आपके जाने से फिसाद हो सकता है।

दारोगा ने विस्मित होकर कहा—मेरे जाने से !

हरिविलास—हाँ, आपके जाने से। रिआया को आपस में लड़ाकर आप अपना उल्लू सीधा करते हैं। मैं आपके हथकंडों से खूब वाकिफ हूँ। आपको मेरे साथ चलने की जरूरत नहीं।

दारोगा—सुपरिटेन्डेन्ट साहब बहादुर का सख्त हुक्म है कि इस मौके पर हुजूर की खिदमत में हाजिर रहूँ।

हरिविलास—तो क्या आप मुझे नजरबन्द करने आये हैं ?

दारोगा ने भयभीत होकर कहा—हुजूर की शान में मुझसे ऐसी...

हरिविलास—मैं तुम्हारे साहब का गुलाम नहीं हूँ।

दारोगा—तो मेरे लिए क्या आर्डर होता है ?

हरिविलास—जा कर अपने साफे को जला डालिए और बरदी को फाड़ कर फेंक दीजिए और इस गुलामी की जंजीर को जो आपकी कमर में है और जिसे आप हुकूमत का निशान समझते हैं तोड़ कर आजाद हो जाइए। सरकारी हुक्मों की बहुत तामील कर चुके। डाके और चोरी की तफतीश खूब की और हराम का माल खूब जमा किया। अब जा कर कुछ दिनों घर बैठिए और अपने पापों का प्रायश्चित कीजिए। रिआया की जान व माल हिफाजत करने का स्वाँग भर कर उनको अजाब में न डालिए। यह किसानों की पंचायत है, लुटेरों का जत्था नहीं है, सब एक जगह बैठ कर नशेबाजी बन्द करने की तदबीरें सोचेंगे। आपको मेरे साथ चलने की मुतलक जरूरत नहीं है।

बा० हरिविलास का मुखमंडल विमल क्रोध से उत्तेजित हो रहा

था और आँखों से ज्योति निकल रही थी। दरोगा जी पर रोब छा गया और यह सोचते हुए कि या तो तो इन्होंने आज शराब पी है या इन पर कोई सख्त सदमा आ पड़ा है, थाने चले गये। ये शब्द बा० हरिविलास के अन्तःकरण से निकले थे। यह उनके अन्तिम निश्चय की घोषणा थी। दरोगा जी ने इधर पीठ फेरी उधर उन्होंने अपना इस्तीफा लिखना शुरू किया।

"महाशय! मेरा विश्वास है कि शासन-संस्था ईश्वरी इच्छा का बाह्य स्वरूप है और उसके नियम भी ईश्वरीय नियमों की भाँति दया, सत्य और न्याय पर अवलम्बित हैं। मैंने इसी विश्वास के अधीन २० वर्ष तक सरकार की सेवा की। जब कभी मेरे आत्मिक आदेश और सरकारी हुक्म में विरोध हुआ, मैंने यथासाध्य आत्मा का आदेश पालन किया। मैंने अपने को कभी प्रजा का स्वामी नहीं समझा, सदैव सेवक समझता रहा, इसलिए सरकारी पत्र नं०...तारीख...में जो आज्ञा दी गयी है वह मेरी आत्मा और धर्म के इतनी विरुद्ध है और उसमें न्याय की ऐसी हत्या की गयी है कि मैं उसका पालन करना घोर पाप समझता हूँ। मेरे विचार में वर्त्तमान शासन सत्पथ से सम्पूर्णतः विचलित हो गया है। यह आज्ञा प्रजा के जन्मसिद्ध स्वत्व को छीनना और उनके राष्ट्रीय भावों का वध करना चाहती है। यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि शासक-वृन्द प्रजा को अनन्त काल तक मूर्खता और अज्ञान में व्यस्त रखना चाहते हैं और उसकी जागृति से सशंक हैं। वह अपने उत्थान और सुधार के लिए जो प्रयत्न करना चाहती है उसे भी ताड़नीय समझते हैं, ऐसे दुष्कर्म में योग देना अपनी आत्मा, विवेक और जातीयता का खून करना है। अतएव अब मुझे इस राज-संस्था से असहयोग करने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। मैं अपना पद-त्याग करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि मुझे बिना विलम्ब इस बन्धन से मुक्त किया जाय।"

७

बाबू हरिबिलास ने समझा था कि इस्तीफा मंजूर होने में कुछ देर

लगेगी; लेकिन दूसरे ही दिन तार द्वारा मंजूरी आ गयी। उनकी जगह पर एक महाशय नियुक्त हो गये। हरिबिलास ने बड़ी खुशी से चार्ज दिया, किन्तु शाम होते-होते उनकी यह खुशी गायब हो गयी और अनेक चिन्ताओं ने आ घेरा। बजाज के कई सौ रुपये बाकी थे, नौकरों का वेतन भी बाकी पड़ा हुआ था, बँगले का किराया ६ महीने से न दिया गया था, हलवाई का हिसाब-किताब चुकाना था, ग्वाले के कुछ रुपये आते थे। इधर वे इजलास पर बैठे हुए चार्ज दे रहे थे, उधर उनकी कोठी के द्वार पर लेनदारों की भीड़ लगी हुई थी। वे चार्ज दे कर लौटे तो यह समूह देख कर उनका दिल बैठ गया। यों वे कुछ हाल और कुछ बकाया के रुपये अपनी सुविधा के अनुसार दे दिया करते थे। लेकिन आज जब हाल और बकाया दोनों ही चुकाना पड़ा तो यह रकम इस तरह बढ़ी जैसे साफ फर्श को हटा देने से नीचे गर्द का एक ढेर दिखाई देने लगता है। उन्हें अब तक यह अनुमान ही न हुआ था कि मैं इतने रुपयों का देनदार हूँ। सेविंग बैंक की सारी बचत इसी फुटकर हिसाब के चुकाने में समाप्त हो गयी। अब घोड़े, टमटम आदि की भी जरूरत न थी। उन्हें नीलाम करके हाथ में कुछ रुपये कर लेना चाहते थे। दूसरे दिन प्रातःकाल जब वे चीजें नीलाम होने लगीं तो वे इस हृदय-विदारक दृश्य को सहन न कर सके। हताश हो कर घर में गये तो उनकी आँखें सजल थीं। सुमित्रा ने उन्हें दुखी देख कर सहृदयतापूर्ण भाव से कहा—व्यर्थ दिल इतना छोटा करते हो। रंज करने की कोई बात नहीं, यह तो और खुशी की बात है कि जिस काम के करने में अधर्म था उससे गला छूट गया। अब तुम्हें किसी पर अन्याय करने के लिए कोई मजबूर तो न करेगा। भगवान किसी-न-किसी तरह बेड़ा पार लगावेंगे ही। अपने भाई-बन्दों पर अन्याय करते तो उसका दोष, पाप हमारे ही बाल-बच्चों पर न पड़ता? भगवान को कुछ अच्छा करना था तभी तो उसने तुम्हारे मन में यह बात डाली।

इन बातों से हरिबिलस को कुछ तकसीन हुई। सुमित्रा पहले इस्तीफा

देने पर राजी न होती थी, पर पति को मानसिक कष्ट से निवृत्त करने की इच्छा ने उसके धैर्य और संतोष को सजग कर दिया था।

हरिविलास ने सुमित्रा की ओर श्रद्धाभाव से देख कर कहा, जानती हो कितनी तकलीफें उठानी पड़ेंगी ?

सुमित्रा—तकलीफों से क्या डरना। धर्म-रक्षा के लिए आदमी सब कुछ सह लेता है। हमें भी तो आखिर ईश्वर के दरबार में जाना है। उसको कौन-सा मुँह दिखाते।

हरिविलास—क्या बताऊँ मुझे तो इस वैज्ञानिक शिक्षा ने कहीं का न रखा। ईश्वर पर श्रद्धा ही नहीं रही। यद्यपि मैंने इन्हीं भावों से प्रेरित हो कर इस्तीफा दिया है, पर मुझमें यह सजीव और चैतन्य भक्ति नहीं है। मुझे चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दिखता है। लड़के अभी तक अपने को सँभालने के योग्य नहीं हुए। शिवविलास को साल भर और भी पढ़ा सकता तो वह घर संभाल लेता ! सतविलास को अभी तीन साल तक सँभालने की जरूरत है और बेचारे श्रीविलास की तो अभी कोई गिनती ही नहीं। अब ये बेचारे अद्धड़ ही रह जायँगे। मालूम नहीं, मन में मुझे क्या समझते हों।

सुमित्रा—अगर उन्हें ईश्वर ने बुद्धि दी होगी तो अब वह तुम्हें अपना पिता समझने के बदले देवता समझने लगेंगे।

८

रात का समय था। शिवविलास और उनके दोनों भाई बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे।

शिवविलास ने कहा, आजकल दादा की दशा देख कर यही जी चाहता है कि गृहस्थी के जंजाल में न पड़ें। कल जब से इस्तीफा मंजूर हुआ है तब से उनका चेहरा ऐसा उदास हो गया है कि देखकर करुणा आती है। कई बार इच्छा हुई कि चल कर उन्हें तस्कीन दूं, लेकिन उनके सामने जाते हुए स्वयं मेरी आँखें सजल हो जाती हैं। आखिर हमी लोगों की चिन्ता उन्हें सता रही है, नहीं तो उन्हें अपनी क्या चिन्ता

थी ? चाहें तो किसी स्कूल या कालेज में अध्यापक हो सकते हैं। दर्शन और अर्थशास्त्र में बहुत कुशल हैं।

सन्तबिलास—आपने मेडिकल कालेज से अपना नाम नाहक कटवा लिया। यह विभाग तो बुरा न था। आप सरकारी नौकरी न करते, घर बैठ कर तो काम कर सकते थे। दादा से भी न पूछा। वे सुनेंगे तो बहुत रंज होगा।

शिवबिलास—इसी लिए तो मैंने अब तक उनसे कहा नहीं। और फिर मौका भी नहीं मिला। डाक्टरी विभाग कितना ही अच्छा हो लेकिन मैंने जो संकल्प कर लिया है उस पर स्थिर हूँ। क्यों, तुम कुछ मदद कर सकोगे ?

श्रीबिलास—वह देखिये मियाँ घोड़े अस्तबल से निकले। अब कल से किसी दूसरे कोचवान के पाले पड़ेंगे, मारते-मारते भुरकस निकाल देगा। टूटी टमटम भी सटर-पटर करती हुई चली।

सन्तबिलास—मैं तो परीक्षा के पहले शायद आपकी कुछ मदद न कर सकूं। उसके बाद मुझसे जो काम चाहें, ले सकते हैं।

शिवबिलास—एम० ए० से क्यों तुम्हें इतना प्रेम है।

श्रीबिलास—एम० ए० का अर्थ है 'मास्टर आफ आर्ट्स'।

सन्तबिलास—यह मेरी बहुत पुरानी अभिलाषा है और अब लक्ष्य के इतना समीप आ कर मुझसे नहीं हटा जाता।

शिवबिलास—अपने नाम के पीछे एम० ए०, एल-एल० बी० का पुछल्ला लगाये बिना नहीं मानोगे।

संत—(चिढ़ कर) कोई और भी मानता है या मैं ही मानूं। सभी तो इन उपाधियों पर जान देते हैं और क्यों न दें, समाज में इनका सम्मान कितना है। अभी तक शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जिसने अपनी डिग्रियाँ छोड़ दी हों। वे लोग भी जो असहयोग के नेता थे अपने नामों के साथ पुछल्ले लगाने में कोई आपत्ति नहीं समझते, नहीं बल्कि उस पर गर्व करते हैं। आपके राष्ट्रीय कालेजों में भी इन्हीं डिग्रियों की पूछ

होती है। चरित्र को कोई पूछता भी नहीं। जब हम इसी कसौटी पर परखे जाते हैं तो मेरे उपाधि प्रेम पर किसी को हँसने की जगह नहीं है।

शिवविलास—तुम तो नाराज हो गये। मेरा आक्षेप तुम पर नहीं बल्कि सभी उपाधि-प्रेमियों पर था। यदि असहयोगी लोग अभी तक उपाधियों पर जान दे रहे हैं तो इससे इस प्रथा का दूषण कम नहीं होता है। यह उनके लिए और भी निन्द्य है। लेकिन हाँ, अब हवा बदल रही है, सम्भव है थोड़े दिनों में यह प्रथा मिट जाय। तुम एक वर्ष में मेरी सहायता करने का वचन देते हो। इतने दिन तक एक समाचार-पत्र का बोझ मैं अकेले कैसे सँभाल सकूँगा।

संत—पहले यह तो बतलाइए आपकी नीति क्या होगी? अगर आपने भी वही नीति रखी जो दूसरे पत्रों की है तो अलग पत्र निकालने की क्या जरूरत है?

श्रीविलास—मुझसे तो आप लोग पूछते ही नहीं। मैं भी मदरसा छोड़ रहा हूँ।

शिव—तुम मेरे कार्यालय में लेखक बन जाना।

संत—तुम क्यो बीच में बोल उठते हो? हाँ, भाई साहब, आपने कौन-सी नीति ग्रहण करने का निश्चय किया है?

शिव—मेरी नीति होगी सरल, किन्तु विवेकशील जीवन का प्रचार। मैं विलासिता और दिखावे की जड़ खोदने की चेष्टा करूँगा। हम आँखें बन्द किये हुए पच्छिमी जीवन की नकल कर रहे हैं। धन को हमने सर्वोच्च स्थान दे रखा है। हमारी कुलीनता, सम्मान, गौरव, प्रतिभा सब कुछ धन के अधीन हो गयी है। हम अपने पुरुषाओं के सन्तोष और संयम, त्याग को बिल्कुल भूल गये हैं। जहाँ देखिए वहीं धनपतियों की, साहूकारों की, जमींदारों की पताका लहरा रही है। मैं दीन-रक्षा को अपना आदर्श बनाऊँगा। यद्यपि ये विचार नये नहीं हैं, कभी-कभी पत्रों में इन पर टिप्पणियाँ की जाती हैं, किन्तु अभी तक इनका महत्व दार्शनिक सिद्धान्तों से अधिक नहीं है, और वह भी यूरोप के बड़े-बड़े विद्वानों

की नकल है। यह टिप्पणियाँ केवल मनोरंजन के लिए की जाती हैं, इसी कारण इनका किसी पर असर नहीं पड़ता। मेरा जीवन इस सिद्धान्त को चरितार्थ करेगा। ये विचार बरसों से मेरे मन में तरंगें मार रहे हैं। अब ये तरंगें बाहर निकल कर धन-लोलुपता और इन्द्रिय-लिप्सा की दीवारों से टकरायेंगी। मैं तुमसे सच कहता हूँ, धन का यह मान देख कर कभी-कभी मेरा रक्त खौलने लगता है। विद्वानों और गुणियों की इज्जत ही उठ गयी। एक समय वह था कि बड़े-बड़े सम्राट् ज्ञानियों के सामने सिर झुकाते थे। आजकल तो धार्मिक संस्थाएँ भी धनियों का मुँह ताकती रहती हैं। हमारे साधु-महात्मा, उपदेशक देहातों में भूल कर भी नहीं जाते। वे ऊँचे-ऊँचे सुसज्जित पंडालों में व्याख्यान देते हैं, मोटरों पर हवा खाते और सुन्दर प्रासादों में निवास करते हैं। शोक तो यह है कि विद्वज्जन भी इसी धनदेव के उपासक हैं। जिन्हें संतोष और सरलता का नमूना होना चाहिए था वे भी अपनी विद्या और योग्यता को मोतियों के तौल बेचते हैं। धन-लालसा ने उन्हें भी ग्रस लिया, त्याग का तो लोप ही हो गया।

सत—आपके विचार तो साम्यवादियों से हैं। क्या आपको मालूम नहीं कि वे लोग विद्वानों को अपने समाज में क्या स्थान देते हैं?

शिव—खूब मालूम है, ऐसे विद्वान् इसी बर्ताव के योग्य हैं। जिस प्रकार भूमिवाले अपनी भूमि को, व्यापार वाले अपने व्यापार को भोग-विलास का साधन बनाते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग भी अपनी विद्या और सिद्धि को इन्द्रियों के सुख पर बलिदान करते हैं। ऐसी दशा में उन्हें यदि धनियों और भूपतियों के साथ गिना जाता है तो कोई अन्याय नहीं है।

इतने में एक सुन्दरी बालिका कमरे में आयी। यह बाबू हरिबिलास की छोटी लड़की अंजनी थी। कन्या पाठशाला में पढ़ती थी। श्रीबिलास ने कहा, आओ अंजनी आओ, ये दोनों महाशय तो बड़ी-बड़ी बातें कर रहे हैं, हम-तुम भी अपने जीवन के छोटे-छोटे मन्सूबे बाँधें। मैंने तो खेती करने

का विचार किया है।

अंजनी—मैं तुम्हारी गाय दुहूँगी, दही जमाऊँगी, घी निकालूंगी।

श्री—और चर्खा ?

अंजनी—भैया, मुझसे चर्खा न चलाया जायगा, यह बुढ़िया का काम है।

श्री—वाह इस चर्खे पर तो सब कुछ निर्भर है। हमारे देश में ७० करोड़ का कपड़ा हर साल विलायत से आता है। शायद १० करोड़ का कपड़ा इटली, जापान, फ्रान्स आदि देशों से आता होगा। हम, तुम और भाग्यवती आध पाव सूत रोज कातें और साल में ३०० दिन काम करें तो तीन मन सूत कात लेंगे। ३ मन सूत में कम-से-कम १०० जोड़े धोतियाँ तैयार होंगी। अगर एक जोड़े का दाम ४) ही रखें तो हम साल भर में ४००) की धोतियाँ बना लेंगे। बुनाई मैं आप कर लूंगा। यह ३ प्राणियों के साधारण परिश्रम का फल है। यदि देश की आबादी में केवल ५० लाख मनुष्य यह काम करने लगें तो हमारे देश को ८० करोड़ वार्षिक बचत हो जायगी। अगर एक करोड़ मनुष्य इस धन्धे में लग जायँ तो हमें कपड़े के लिए अन्य देशों को एक पैसा भी न देना पड़े।

शिव—(हिसाब लगाकर) यार तुमने खूब हिसाब लगाया। इतने महत्वपूर्ण काम के लिए ५० लाख मनुष्यों की आवश्यकता है। मुझे अब तक यह अनुमान ही न था कि इतने कम आदमियों की मेहनत हमारी आवश्यकताओं को पूरी कर सकती है। चलो मैं भी तुम्हारी मदद करूँगा। अपने पत्र में घरेलू गद्योग-धन्धों का प्रचार करूँगा।

सन्त—आपके और मेरे आदर्शों में बड़ा अन्तर है। मेरा विचार है कि बुद्धि और मस्तिष्क से काम करनेवालों की श्रमजीवियों पर सदैव प्रधानता रहेगी। उनके काम का महत्व कहीं अधिक है। यदि आप उनके लिए अवस्थानुकूल जीवनवृत्ति की व्यवस्था नहीं करेंगे तो वे एकाग्रचित्त हो कर विद्या की उन्नति न कर सकेंगे और उसका परिणाम बुरा होगा। सन्तोष और त्याग राष्ट्रीय अवनति के लक्षण हैं। उन्नत

जातियाँ अधिकार, राज्य विस्तार, सम्पत्ति और गौरव पर जान देती हैं, यहाँ तक कि बोलशेविष्ट भी दिनोंदिन अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाते चले जाते हैं।

शिव—इस विषय पर फिर बातें होंगी, चलो इस समय मौका है, दादा घर में अम्माँ के पास बैठे हुए हैं, जरा उन्हें तसकीन दे आयें।

९

तीनों युवक जा कर हरिविलास के सामने खड़े हो गये। उन्होंने चिन्तित भाव से शिवविलास को देख कर पूछा, तुम्हारा कालेज कब खुलेगा?

शिव—कालेज १५ जनवरी को खुलेगा, लेकिन मैं वहाँ जाना नहीं चाहता। नाम कटवा लिया।

हरिविलास—यह तुमने क्या नादानी की। तुम्हारी समझ में क्या मैं चार महीने तक भी तुम्हारी सहायता न कर सकता। इसी एप्रिल में तो तुम्हारी परीक्षा होनेवाली थी, कम-से-कम मुझसे पूछ तो लेते, या मेरा इतना अधिकार भी नहीं है?

शिव—इतनी भूल तो अवश्य हुई, लेकिन जब आपने न्याय के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया तो मेरे लिए यह लज्जा की बात थी कि आपके आदर्श के विरुद्ध व्यवहार करता। मैंने डाक्टरी पढ़ने का इरादा छोड़ दिया। कम-से-कम इसे जीविका का आधार नहीं बनाना चाहता। मेरा विचार एक समाचार-पत्र निकालने का है।

हरिविलास—जेलखाने जाने के लिए भी तैयार हो?

शिवबिलास—यदि न्याय और सत्य की रक्षा के लिए जेल जाना पड़े तो मैं इसे अहोभाग्य समझूंगा।

हरिविलास—मालूम होता है तुम्हें हवा अच्छी तरह लग गयी। रुपयों का क्या प्रबन्ध किया?

शिवबिलास—इसकी आप चिन्ता न कीजिए। मेरे कई मित्रों ने सहायता करने का वचन दिया है।

हरिबिलास—अच्छी बात है, इसका भी मजा चख लो। अभी राजनीति के चक्कर में आये नहीं हो, समझते हो जाति-सेवा जितनी स्तुत्य है उतनी ही सुगम भी है, पर तुम्हें शीघ्र ही अनुभव हो जायगा कि यहाँ पग-पग पर काँटे हैं। मैं ऐसा स्वार्थान्ध और भाव-शून्य नहीं हूँ कि तुम्हारे देशानुराग को दबाना चाहूँ। किन्तु इतना जता देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि खूब सोच-समझ कर इस क्षेत्र में आना। अगर कुछ दूर चल कर हिम्मत छोड़ दी तो फिर कहीं मुँह दिखाने लायक न रहोगे। मैं तुमसे मदद नहीं चाहता बल्कि मेरे लिए तो यह परम गौरव की बात है कि मेरा पुत्र देश-सेवा में तल्लीन हो जाय, अपने को जाति पर न्योछावर कर दे, केवल तुम्हें कठिनाइयों से सचेत कर देना चाहता हूँ, तुम कब जाओगे सन्तू ?

सन्त—मैं १५ जनवरी को जाऊँगा।

हरिबिलास—तुम्हें कितने रुपयों की जरूरत होगी। इसी महीने में तो तुम्हें इम्तहान की फीस भी देनी होगी।

सन्त—जी हाँ, कोई ढाई सौ की जरूरत है।

हरिबिलास—(बगलें झाँकते हुए) इससे कम में काम न चलेगा ?

सन्त—असम्भव है, ६ महीनों की पेशगी फीस देनी है, इम्तहान की फीस, बोर्डिंग की फीस, सभी तो चुकानी है। एक सूट भी बनवाना चाहता हूँ। मेरे पास कोई अच्छा सूट नहीं है।

हरिबिलास—इस समय सूट रहने दो, फिर बनवा लेना, हाँ फीस का प्रबन्ध मैं कर दूँगा। इससे कहाँ मुक्ति ! पढ़ो तो मुश्किल से ५ महीने और फीस दो पूरे साल की।

सन्त—तो फिर कुछ न दीजिए, मैं स्वयं कोई प्रबन्ध कर लूंगा। आपके ऊपर खाहमख्वाह बोझ नहीं डालना चाहता।

हरिबिलास—यह तुम्हारी बुरी आदत है कि जरा-जरा-सी बात पर चिढ़ जाते हो। मेरी हालत देख रहे हो, फिर भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं।

सन्त—तो क्या आपकी इच्छा है कि मैं भी कालेज से नाम कटा लूं।

हरिविलास—यह तो मेरी इच्छा नहीं है, लेकिन अब तुम्हें अवस्थानुसार अपना खर्च घटाना पड़ेगा। मुझे यह देख कर खेद होता है कि वर्तमान दशाओं का तुम्हारे ऊपर बिलकुल असर नहीं हुआ। आजकल समस्त देश सरल जीवन की ओर झुका हुआ है। कोई मनुष्य अपने ठाटबाट, टीमटाम पर गर्व करने का साहस नहीं कर सकता। रेशमी वस्त्र और डासन के जूते और सुनहरे चश्मे अब तुच्छ दृष्टि से देखे जाते हैं। विशेषतः शिक्षित समुदाय के विलास-प्रेम को तो जनता सर्वथा अक्षम्य समझती है। शिक्षित लोगों से अब सेवा और उत्सर्ग की आशा की जाती है। वकीलों पर अब सम्मान की दृष्टि नहीं पड़ती, लोग उनसे विमुख होते जा रहे हैं। धनलोलुप अध्यापकों को तो जनता घृणा की निगाह से देखती है। मैंने स्वार्थवश तुम्हें वकालत की प्रेरणा की थी, किन्तु अब मुझे विश्वास होता जाता है कि हमारी जाति की अवनति का एक मुख्य कारण यही पेशा है। इसकी बदौलत हमारी अदालतों में न्याय सर्वसाधारण के लिए अलभ्य हो रहा है। जब एक-एक पेशी के लिए दो-दो, चार-चार सौ, यहाँ तक कि दो-दो, चार-चार हजार लिये जाते हैं तो स्पष्ट है कि यह समय या परिश्रम का मूल्य नहीं बल्कि लोगों की ईर्ष्या और दुर्जनता का ब्याज है। जिस पेशे का आधार मानव-दुर्बलताओं पर हो, वह समाज के लिए कभी मंगलकारी नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे इरादे में विघ्न नहीं डालना चाहता लेकिन यदि तुम वकालत को न्याय-रक्षा के लिए नहीं, विलास के लिए ग्रहण करना चाहते हो तो बेहतर है कि तुम इसे तिलांजलि दे दो।

सन्तविलास ने कुछ उत्तर न दिया। खिन्न हो कर वहाँ से उठ गये। तब बाबू हरिबिलास ने श्रीबिलास से पूछा, तुम तो इम्तहान की तैयारी कर रहे हो।

श्रीबिलास—जब आप कह रहे हैं कि दौलतवालों की आजकल कोई कदर नहीं है तो फिर ऐसी शिक्षा से क्या फायदा, जिसका उद्देश्य

केवल धन कमाना है। मेरा भी नाम कटवा दीजिए। मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। मेरा इरादा खेती करने का है। अंजनी भी मेरी मदद करेगी। आखिर आप देहात में चल कर कुछ-न-कुछ खेती जरूर ही करायेंगे। मुझको इस काम के लिए तैयार कर दीजिए।

हरिविलास के मुखमंडल पर आत्माभिमान की लाली दिखाई दी। सुमित्रा से बोले, लो श्रीविलासने तुम्हारी चिन्ताओं का अन्त कर दिया। तुम सोच रही थीं कि कैसे क्या होगा। चल कर आराम से गाँव में रहो। यह खेती करेगा, तुम आराम की नींद सोओ और राम का नाम लो।

१०

इसके तीसरे ही दिन बाबू हरिविलास अपने गाँव में आ गये। मकान बे-मरम्मत पड़ा हुआ था, आगे-पीछे घास जम गयी थी; गाँववालों ने द्वार पर खाद और कूड़े के ढेर लगा दिये थे। इधर वे कई साल से घर न आये थे। साफ बंगलों में रहने के आदी हो गये थे। उनके देखते यह घर झोपड़े से भी बदतर था। शिवविलास ने असबाब उतारा और झाड़ू ले कर द्वार की सफाई करने लगा। अंजनी भी घर में झाड़ू देने लगी। श्रीविलास कुछ देर तक तो खड़ा देखता रहा, फिर टोकरी ले कर कूड़ा फेंकने लगा। गाँव में यह खबर फैल गयी कि हरिविलास ने गाँधी महात्मा के हुक्म से इस्तीफा दे दिया। लोग इधर-उधर से आने लगे। कोई उनको सत्यवादी कहता था, कोई कहता था रिश्वत ली है, बर्खास्त हो गये हैं तो यह बहाना कर रहे हैं। हरिविलास एक टूटी खाट पर उदास बैठे हुए थे, सुमित्रा भीतर खड़ी सोच रही थी कि यह कूड़े का पहाड़ क्यों कर हटेगा। पहले यह लोग जब घर आते थे तो गाँव के लोग संकोचवश इनके समीप न आते थे। इनके ठाटबाट की सामग्रियों को कौतूहल की दृष्टि से देखते थे, पर कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ती थी। किन्तु अबकी वे विस्मयकारी वस्तुएँ न थीं, न लड़कों में वह शेखी थी, न हरिविलास और सुमित्रा में वह बड़प्पन की ऐंठ। अतएव सब-के-सब उनसे सहानुभूति करने लगे। स्त्रियाँ अंजनी के साथ घर की

सफाई करने लगीं, कई आदमियों ने शिवविलास के हाथ से झाड़ू छीन लिया और कूड़ा फेंकने लगे।

रामभरोस पंडित ने कहा, भैया भला कियो, इस्तीफा दे दिहेव, देश-विदेश मारे-मारे फिरत रह्यो। घर माटी में मिला जात रहा।

शेख ईदू बोले, चाकरी चाहे छोटी हो या बड़ी हो, मुदा चाकरी ही है। अल्लाह ने घर में सब कुछ दिया है तो काहे कोऊ की बन्दगी उठाई जाय।

गोबर चौकीदार बोला, मुदा भैया हुद्दा बड़ा भारू रहै। कई जिला भरे मां अस बड़वार हुद्दा कोऊ नहीं पायेस।

भोजू कुरमी बोले, हुद्दा तो भारू रहै मुदा कितने गरीबन के गला रेते का परत रहा। सेकरन के जेहल पठै दिये होई हैं। ई लड़ाई मा गरीबन का मार-मार केतना करजा दियावे के परा होई। दौड़ा करै जात रहे होइ हैं तो केतना बेगार लेका परत रहा होइ। हज्जारन किसान का बेदखली, कुड़की, अखराज इनके हाथन भवा होई। अब घर मां रहि हैं तो ई पापन से गला छूट जाई।

गोबर—रुआब केतना रहै, हुकूमत केतनी रहै।

भोजू—रुआब हुद्दा से नहीं होत है, रुआब भलमनसी से होत है, विद्या से होत है। रामभरोस पंडित का देख के काहे सब कोउ खटिया से उठके पैलगी करत हैं। थानेदार आवत हैं तो उनकी खातिर सेर भर आटा देत सब का केतना अखरत है, नाहीं तो सासतरी जी जे के घर अपने चार-छः चेलन सहित जाय परत हैं ऊ आपन भाग सराहत है। जिला में एक-से-एक हाकिम परे हैं। महात्मा जी के बरोबर है कोऊ का रुआब? आज हुकुम दें तो मनई आग माँ कूदैका तैयार हैं।

रामभरोस—सन्तविलास बाबू नाहीं देख परत हैं।

हरिविलास—कालेज में वकालत पढ़ रहे हैं।

रामभरोसे—ई विद्या तो भैया उनका नाहक पढ़ावत हौ। बड़-बड़ा कुकरम करै का परत है। ओकिलन का मारा जिला तबाह होइगवा, सब

मारेन लड़ाय-लड़ाय के देश का खोख कै दिहेन ।

ईदू—बाबू, तुम अब आपन जमीन छोड़ाय लेव और मजे से खेती करो । चाकरी बहुत दिन किह्यो, अब कुछ दिन गृहस्थी का मजा लेव । उतना सुख तो न पैहो पर चोला आनन्द रही । परदेसवां जौन कमात रहे होइहो तौन सब कपड़ा-लत्ता, कुरसी-मेज, मेवा-मिठाई माँ उड़ जाता रहा होई । २५-३० रु० का तो दूध पी जात रहा होइ हो, ३०-४० रु० से कम घर का किराया न परत रहा होई । तुम्हार कुल खेत छूट जाय तो मजे से चार हर की खेती होय लागे ।

हरिबिलास ने संकोच से मुस्करा कर कहा, रुपये कहाँ से लाऊँ ? सब आदमियों ने उनकी ओर संदिग्ध भाव से देखा, मानों वह कोई अनोखी बात कर रहे हैं । अन्त में भोजू बोला, का कहत हो भैया, कौन बहुत रुपैया है ! तीन-चार हजार तो तुम्हारे सन्दूक के एक कोने में धरा होई । इतनी बड़ी तलब पावत रह्यो, नजर-नियाज लेते रहे होई हो, इतना सब कहाँ उड़ायो ?

हरि०—मैंने रिश्वत कभी नहीं ली । मासिक वेतन में खर्च ही कठिनता से चलता था, बचत कहाँ से होती ?

भोजू—बेटा, तब तो तुम्हारी चाकरी गुनाह बेलज्जत है । नाहीं अस खक्ख का होइ हो, दस बीस हजार तो होवै करी ।

हरि०—नहीं चचा सच मानो, मैं बिलकुल खाली हाथ हूँ !

भोजू—तब गुजर बसर कसक होई ?

हरि०—ईश्वर मालिक है ।

भोजू—दूनों लड़कन अब की बहुत सुसील देख परत हैं । पहले तो कोऊ से बाते न करत रहे ।

यही बातें हो रही थीं कि गाँव के जमींदार ठाकुर करनसिंह अपने दो मुसाहिबों के साथ हाथी पर आते दिखाई दिये । लोग तुरन्त चारपाइयों से उठ बैठे । हरिबिलास के सामने ऐसे कितने ही जमींदार नित्य सलाम करने आया करते थे । पर करनसिंह को देखकर वह भी खड़े हो

गये। हाथी रुका। करनसिंह उतर पड़े और हरिविलास का हाथ पकड़ कर उन्हें चारपाई पर बैठा कर आप भी बैठ गये।

हरिविलास ने कुशल समाचार पूछा। ठाकुर ने श्रद्धापूर्ण भाव से कहा, यह भूमि आपके चरणों से पवित्र हो गयी। अब यहाँ सब कुशल है। कल प्रातःकाल पत्र खोला तो आप ही के आनन्द समाचार पर नजर पड़ी। आपके साहस और पुरुषार्थ को धन्य है। मुझे महीनों से ज्वर आता था, पर सत्य मानिए यह शुभ समाचार देखते ही मैं चंगा हो गया। महीनों मे दवाइयाँ खा रहा था, चारपाई से उठना कठिन था। आज आपकी सेवा में खड़ा हूँ। यह आपके पदार्पण का शुभ फल है। परमात्मा ने हम लोगों का उद्धार करने के लिए आपके हृदय में यह प्रेरणा की। हमने इधर कुछ दिनों से पंचायत स्थापित की है। उसका कोई ऐसा सरपंच नहीं मिलता था जिस पर जनता का विश्वास हो। आपको परमात्मा ने उसका बेड़ा पार करने के लिए भेजा है। उसके प्रधान का आसन ग्रहण करके हमें उपकृत कीजिए। जूही के राजा साहब, बगटा के खाँ साहब और राय दुनीचन्द्र उसके सदस्य हैं। मैं उनकी ओर से यह निमन्त्रण लेकर आपकी सेवा में आया हूँ।

हरिविलास ने सकुचाते हुए कहा, आप मुझे इस योग्य समझते हैं यह आपकी कृपा है। पर मैं इस सम्मान का अधिकारी नहीं हूँ। जिस पंचायत के सदस्य ऐसे-ऐसे माननीय लोग हों उसका प्रधान बनने का साहस मैं नहीं कर सकता।

करनसिंह—बाबू साहब, आप अपने मुँह से ऐसा न कहिए। आप पहले एक परगने के हाकिम थे। आज सहस्रों हृदयों पर आपका अधिकार है। क्या छोटे क्या बड़े सब आपको पूज्य समझते हैं। आपको मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ेगी।

हरिविलास इस सम्मान-पद के भार से सिर न उठा सके। करनसिंह ने उठकर फूलों का हार उनके गले में डाल दिया।

इसके बाद करनसिंह एक क्षण तक किसी विचार में डूबे रहे।

जान पड़ता था कुछ कहना चाहते हैं, पर संकोच के मारे जबान नहीं खुलती। अन्त में लजाते हुए बोले, बाबू जी मेरी एक प्रार्थना तो आपने मान ली, अब मुझे एक दूसरी प्रार्थना करने का साहस हो रहा है। आज्ञा हो तो कहूँ।

हरिविलास—शौक से कहिए, मैं सहर्ष आपकी सेवा करूँगा। करन-सिंह ने जेब से एक बन्द लिफाफा निकाला और बोले, मैं इसे आपके चरणों पर समर्पण करने की आज्ञा चाहता हूँ। हरिविलास ने दबी हुई आँखों से लिफाफे की तरफ देखा। लिखा था—

'रेहननामा रामबिलास महतो, मौजा बिदोखर।'

उनकी आँखों में एहसान के आँसू भर आये। कुछ कहना चाहते थे किन्तु करनसिंह ने उन्हें बोलने का अवसर न दिया उसी दम लिफाफे को फाड़ कर फेंक दिया। और लोग चकित हो रहे थे कि क्या माजरा है! हरिविलास ने उनकी ओर देख कर कहा—आप लोगों को मालूम हुआ यह कैसा लिफाफा था? यही दादा का लिखा हुआ रेहननामा था। यह कहते-कहते उनका कंठ रुक गया।

लाग-डाँट

जीखू भगत और बेचन चौधरी में तीन पीढ़ियों से अदावत चली आती थी, कुछ डाँड़-मेंड़ का झगड़ा था! उनके परदादों में कई बार खून-खच्चर हुआ। बापों के समय से मुकदमेबाजी शुरू हुई। दोनों कई बार हाईकोर्ट तक गये। लड़कों के समय में संग्राम की भीषणता और भी बढ़ी। यहाँ तक कि दोनों ही अशक्त हो गये। पहले दोनों इसी गाँव में आधे-आधे के हिस्सेदार थे। अब उनके पास उस झगड़ेवाले खेत को छोड़कर एक अंगुल जमीन भी न थी। भूमि गयी, धन गया, मान-मर्यादा गयी, लेकिन वह विवाद ज्यों-का-त्यों बना रहा। हाईकोर्ट के धुरन्धर नीतिज्ञ एक मामूली-सा झगड़ा तय न कर सके।

इन दोनों सज्जनों ने गाँव को दो विरोधी दलों में विभक्त कर दिया था। एक दल की भंग-बूटी चौधरी के द्वार पर छनती तो दूसरे दल के चरस-गाँजे के दम भगत के द्वार पर लगते थे। स्त्रियों और बालकों के भी दो-दो दल हो गये थे। यहाँ तक कि दोनों सज्जनों के सामाजिक और धार्मिक विचारों में भी विभाजक रेखा खिंची हुई थी। चौधरी कपड़े पहने सत्तू खा लेते और भगत को ढोंगी कहते। भगत बिना कपड़े उतारे पानी भी न पीते और चौधरी को भ्रष्ट बतलाते। भगत सनातन-धर्मी बने तो चौधरी ने आर्यसमाज का आश्रय लिया। जिस बजाज, पन्सारी या कुंजड़े से चौधरी सौदा लेते उसकी ओर भगत जी ताकना भी पाप समझते थे, और भगत जी के हलवाई की मिठाइयाँ, उनके ग्वाले का दूध, और तेली का तेल चौधरी के लिए त्याज्य था। यहाँ तक कि उनके आरोग्य के सिद्धान्तों में भी भिन्नता थी। भगत जी वैद्यक के कायल थे, चौधरी यूनानी प्रथा के माननेवाले। दोनों चाहे रोग से मर जाते पर अपने सिद्धान्तों को न छोड़ते।

जब देश में राजनैतिक आन्दोलन शुरू हुआ तो उसकी भनक उस गाँव में भी पहुँची। चौधरी ने आन्दोलन का पक्ष लिया, भगत उसके विपक्षी हो गये। एक सज्जन ने गाँव में आ कर किसान सभा खोली। चौधरी उसमें शरीक हुए, भगत अलग रहे। जागृति और बढ़ी, स्वराज्य की चर्चा होने लगी। चौधरी स्वराज्यवादी हो गये। भगत ने राजभक्ति का पक्ष लिया। चौधरी का घर स्वराज्यवादियों का अड्डा हो गया, भगत का घर राजभक्तों का क्लब बन गया।

चौधरी जनता में स्वराज्यवाद का प्रचार करने लगे—मित्रो, स्वराज्य का अर्थ है अपना राज। अपने देश में अपना राज हो तो वह अच्छा है कि किसी दूसरे का राज हो तो वह?

जनता ने कहा—अपना राज हो यह अच्छा है।

चौधरी—तो वह स्वराज्य कैसे मिलेगा? आत्मबल से, पुरुषार्थ से, मेल से, एक दूसरे से द्वेष छोड़ दो, अपने झगड़े आप मिलकर निपटा लो।

एक शंका—आप तो नित्य अदालत में खड़े रहते हैं।

चौधरी—हाँ, पर आज से अदालत जाऊँ तो मुझे गऊ-हत्या का पाप लगे। तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी गाढ़ी कमाई अपने बाल-बच्चों को खिलाओ, और बचे तो परोपकार में लगाओ, वकील-मुख्तारों की जेब क्यों भरते हो? थानेदार को घूस क्यों देते हो, अमलों की चिरौरी क्यों करते हो? पहले हमारे लड़के धर्म की शिक्षा पाते थे, वे सदाचारी, त्यागी, पुरुषार्थी बनते थे। अब वे विदेशी मदरसों में पढ़ कर चाकरी करते हैं, घूस खाते हैं, शौक करते हैं। अपने देवताओं और पितरों की निन्दा करते हैं, सिगरेट पीते हैं, बाल बढ़ाते हैं और हाकिमों की गोड़धरिया करते हैं। क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकों को धर्मानुसार शिक्षा दें?

जनता—चन्दे से पाठशाला खोलनी चाहिए।

चौधरी—हम पहले मदिरा छूना पाप समझते थे, अब गाँव-गाँव में, गली-गली में मदिरा की दूकानें हैं। हम अपनी गाढ़ी कमाई के करोड़ रुपये गाँजे-शराब में उड़ा देते हैं।

जनता—जो गाँव में दारू पिये, उसे डाँड़ लगाना चाहिए।

चौधरी—हमारे दादा, बाबा, छोटे-बड़े सब गाढ़ा-गजी पहनते थे। हमारी दादी-नानी चरखा काता करती थीं। सब धन देश में रहता था। हमारे जोलाहे भाई चैन की वंशी बजाते थे। अब हम विदेश के बने हुए महीन रंगीन कपड़ों पर जान देते हैं। इस तरह दूसरे देशवाले हमारा धन ढो ले जाते हैं। बेचारे जुलाहे कंगाल हो गये। क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयों की थाली छीन कर दूसरों के सामने रख दें?

जनता—गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं।

चौधरी—अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी छोड़ो, अपने लड़कों को धर्म-कर्म सिखाओ, मेल से रहो; बस यही स्वराज्य है। जो लोग कहते हैं कि स्वराज्य के लिए खून की नदी बहेगी वे पागल हैं, उनकी बातों पर ध्यान न दो।

जनता यह बातें बड़े चाव से सुनती थी, दिनों-दिन श्रोताओं की संख्या बढ़ती जाती थी। चौधरी सब के श्रद्धा-भाजन बन गये।

भगत जी राजभक्ति का उपदेश करने लगे।

'भाइयो, राजा का काम राज करना और प्रजा का काम उसकी आज्ञा का पालन करना है, इसी को राजभक्ति कहते हैं और हमारे धार्मिक ग्रंथों में हमें इसी राजभक्ति की शिक्षा दी गयी है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है, उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलना महान् पातक है। राज-विमुख प्राणी नरक का भागी होता है।'

एक शंका—राजा को तो अपने धर्म का पालन करना चाहिए।

दूसरी शंका—हमारे राजा तो नाम के हैं, असली राजा तो विलायत के बनिये महाजन हैं।

तीसरी शंका—बनिये धन कमाना जानते हैं, राज करना क्या जानें?

भगत जी—लोग तुम्हें शिक्षा देते हैं कि अदालतों में मत जाओ, पंचायतों में मुकदमे ले जाओ। ऐसे पंच कहाँ जो सच्चा न्याय करें, दूध-का दूध पानी-का-पानी कर दें। यहाँ मुँह देखी बातें होंगी। जिनका दबाव है उनकी जीत होगी। जिनका कुछ दबाव नहीं है वे बेचारे मारे जायेंगे। अदालतों में सब कार्यवाही कानून से होती है, वहाँ छोटे-बड़े सब बराबर हैं, शेर-बकरी सब एक घाट पानी पीते हैं। इन अदालतों को त्यागना अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना है।

एक शंका—अदालतों में जायें तो रुपये की थैली कहाँ से लायें?

दूसरी शंका—अदालतों का न्याय कहने ही को है। जिसके पास बने हुए गवाह और दाँव-पेंच खेले हुए वकील होते हैं उसी की जीत होती है, झूठे-सच्चे की परख कौन करता है, हाँ, हैरानी अलबत्ता होती है।

भगत—कहा जाता है कि विदेशी चीजों का व्यवहार मत करो। यह गरीबों के साथ घोर अन्याय है। हमें बाजार में जो चीज सस्ती और अच्छी मिले वह लेनी चाहिए—चाहे स्वदेशी हो या विदेशी।

हमारा पैसा सेंत में नहीं आता कि उसे रद्दी, भद्दी स्वदेशी चीजों पर फेंकें।

एक शंका—पैसा अपने देश में तो रहता है, दूसरों के हाथ में तो नहीं जाता?

दूसरी शंका—अपने घर अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियों के घर का अच्छा भोजन करने लगेंगे?

भगत—लोग कहते हैं कि लड़कों को सरकारी मदरसों में मत भेजो। सरकारी मदरसों में न पढ़ते तो आज हमारे भाई बड़ी-बड़ी नौकरियाँ कैसे पाते, बड़े-बड़े कारखाने कैसे चलाते? बिना नयी विद्या पढ़े अब संसार में निर्वाह नहीं हो सकता। पुरानी विद्या पढ़ कर पत्रा देखने और कथा बाँचने के सिवा और क्या आता है? राजकाज क्या यही पोथी बाँचने वाले लोग करेंगे?

एक शंका—हमें राजकाज न चाहिए, हम अपनी खेती-बारी ही में मगन हैं, किसी के गुलाम तो नहीं?

दूसरी शंका—जो विद्या घमंडी बना दे उससे मूरख ही अच्छा। यह नयी विद्या पढ़ कर तो लोग सूट-बूट, घड़ी-छड़ी, हैट-कोट लगाने लगते हैं, अपने शौक के पीछे देश का धन विदेशियों की जेब में भरते हैं। ये देश के द्रोही हैं।

भगत—गाँजा-शराब की ओर आजकल लोगों की कड़ी निगाह है। नशा बुरी लत है इसे सब जानते हैं। सरकार को नशे की दूकानों से करोड़ों रुपये साल की आमदनी है। अगर दूकानों में जाने से लोगों की नशे की लत छूट जाय तो बड़ी अच्छी बात है लेकिन लती की लत कहीं छूटती है? वह दूकान पर न जायगा तो चोरी-छिपे किसी-न-किसी तरह दोगुने-चौगुने दाम दे कर, सजा काटने पर तैयार हो कर अपनी लत पूरी करेगा। तो ऐसा काम क्यों करो कि सरकार का नुकसान अलग हो और गरीब रैयत का नुकसान अलग हो। और फिर किसी-किसी को नशा खाने से फायदा होता है। मैं ही एक दिन अफीम न

खाऊँ तो गाँठों में दर्द होने लगे। दम उखड़ जाय और सर्दी पकड़ ले।

एक आवाज़—शराब पीने से बदन में फुर्ती आ जाती है।

एक शंका—सरकार अधर्म से रुपया कमाती है, उसे यह उचित नहीं है। अधर्मी के राज में रह कर प्रजा का कल्याण कैसे हो सकता है!

दूसरी शंका—पहले दारू पिलाकर पागल बना दिया। लत पड़ी तो पैसे की चाट हुई। इतनी मजूरी किसको मिलती है कि रोटी कपड़ा भी चले और दारू-शराब भी उड़े। या तो बाल-बच्चों को भूखों मारो या चोरी करो, जुआ खेलो और बेईमानी करो। शराब की दूकान क्या है, हमारी गुलामी का अड्डा है।

२

चौधरी के उपदेश सुनने के लिए जनता टूटती थी, लोगों को खड़े होने की जगह न मिलती। दिनोंदिन चौधरी का मान बढ़ने लगा; उनके यहाँ पंचायतों की, राष्ट्रोन्नति की चर्चा रहती। जनता को इन बातों से बड़ा आनन्द और उत्साह होता। उनके राजनैतिक ज्ञान की वृद्धि होती। वे अपना गौरव और महत्व समझने लगे, उन्हें अपनी सत्ता का अनुभव होने लगा, निरंकुशता और अन्याय पर अब उनकी त्योरियाँ चढ़ने लगीं। उन्हें स्वतन्त्रता का स्वाद मिला। घर की रुई, घर का सूत, घर का कपड़ा, घर का भोजन, घर की अदालत; न पुलिस का भय न अमलों की खुशामद, सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करने लगे। कितनों ने ही नशेबाजी छोड़ दी और सद्भावों की एक लहर-सी दौड़ने लगी।

लेकिन भगत जी इतने भाग्यशाली न थे। जनता को दिनोंदिन उनके उपदेशों से अरुचि होती जाती थी। यहाँ तक कि बहुधा उनके श्रोताओं में पटवारी, चौकीदार, मुदर्रिस, और इन्हीं कर्मचारियों के मेली-मित्रों के अतिरिक्त और कोई न होता था। कभी-कभी बड़े हाकिम भी आ निकलते और भगत जी का बड़ा आदर-सत्कार करते, जरा देर

के लिए भगत जी के आँसू पुँछ जाते। लेकिन क्षण-भर का सम्मान आठों पहर के अपमान की बराबरी कैसे करता। जिधर निकल जाते उधर ही उँगलियाँ उठने लगतीं। कोई कहता खुशामदी टट्टू है, कोई कहता खुफिया पुलिस का भेदी है। भगत जी अपने प्रतिद्वन्द्वी की बड़ाई और अपनी लोक-निन्दा पर दाँत पीस कर रह जाते थे। जीवन में यह पहला अवसर ही था कि उन्हें अपने शत्रु के सामने नीचा देखना पड़ा। चिरकाल से जिस कुल-मर्यादा की रक्षा करते आये थे और जिस पर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे वह धूल में मिल गयी। यह दाहमय चिन्ता उन्हें एक क्षण के लिए चैन न लेने देती। नित्य यही समस्या सामने खड़ी रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्योंकर पाऊँ, अपने प्रतिपक्षी को क्योंकर पददलित करूँ। उसका गरूर क्योंकर तोड़ूँ!

अन्त में उन्होंने सिंह को उसकी माँद में ही पछाड़ने का निश्चय किया। सन्ध्या का समय था। चौधरी के द्वार पर एक बड़ी सभा हो रही थी। आस-पास के गाँव के किसान भी आ गये थे। हजारों आदमियों की भीड़ थी। चौधरी उन्हें स्वराज्य विषयक उपदेश दे रहे थे। बार-बार भारत माता की जयकार की ध्वनि उठती थी। एक ओर स्त्रियों का जमाव था। चौधरी ने अपना उपदेश समाप्त किया और अपनी गद्दी पर बैठे। स्वयं-सेवकों में भगत जी न जाने किधर से लपके हुए आये और श्रोताओं के सामने खड़े हो कर उच्च-स्वर से बोले—

'भाइयो, मुझे यहाँ देख कर अचरज मत करो, मैं स्वराज्य का विरोधी नहीं हूँ। ऐसा पतित कौन प्राणी होगा जो स्वराज्य का निन्दक हो, लेकिन इसके प्राप्त करने का वह उपाय नहीं है जो चौधरी ने बतलाया है और जिस पर तुम लोग लट्टू हो रहे हो। जब आपस में फूट और रार है तो पंचायतों से क्या होगा। जब विलासिता का भूत सर पर सवार है तो वह कैसे हटेगा? मदिरा की दूकानों का बहिष्कार कैसे होगा! सिगरेट, साबुन, मोजे, बनियाइन, अद्धी, तंजेब से कैसे पिंड छूटेगा! जब रोब और हुकुमत की लालसा बनी हुई है तो सरकारी

मदरसे कैसे छोड़ेंगे ? विधर्मी शिक्षा की बेड़ी से कैसे मुक्त हो सकोगे ? स्वराज्य लेने का केवल एक ही उपाय है और वह आत्मसंयम है। यही महौषधि तुम्हारे समस्त रोगों को समूल नष्ट करेगी। आत्मा की दुर्बलता ही पराधीनता का मुख्य कारण है, आत्मा को बलवान् बनाओ, इन्द्रियों को साधो, मन को वश में करो तभी तुममें भ्रातृभाव पैदा होगा, तभी वैमनस्य मिटेगा, तभी ईर्ष्या और द्वेष का नाश होगा, तभी भोग विलास से मन हटेगा, तभी नशेबाजी का दमन होगा। आत्मबल के बिना स्वराज्य कभी उपलब्ध न होगा। स्वार्थ सब पापों का मूल है, यही तुम्हें अदालतों में ले जाता है, यही तुम्हें विधर्मी शिक्षा का दास बनाये हुए है। इस पिशाच को आत्मबल से मारो और तुम्हारी कामना पूरी हो जायगी। सब जानते हैं, मैं ५० साल से अफीम का सेवन करता हूँ। आज से मैं अफीम को गो का रक्त समझता हूँ। चौधरी से मेरी तीन पीढ़ियों की अदावत है, आज से चौधरी मेरे भाई हैं। आज से मेरे घर के किसी प्राणी को घर के कते सूत से बने हुए कपड़ों के सिवा कुछ और पहनते देखो तो मुझे जो दण्ड चाहो दो। बस मुझे यही कहना है, परमात्मा हम सब की इच्छा पूरी करें।'

यह कह कर भगत जी घर की ओर चले कि चौधरी दौड़ कर उनके गले से लिपट गये। तीन पुश्तों की अदावत एक क्षण में शान्त हो गयी।

उसी दिन से चौधरी और भगत साथ-साथ स्वराज्य का उपदेश करने लगे। उनमें गाढ़ी मित्रता हो गयी और यह निश्चय करना कठिन था कि दोनों में जनता किसका अधिक सम्मान करती है।

प्रतिद्वन्द्विता की चिनगारी ने दोनों पुरुषों के हृदय-दीपक को प्रकाशित कर दिया था।

Library IIAS, Shimla
H 813.2 P 916 P
00046115